* चमकदार मोती *

(ले० महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज)

Prakash Kirtunkar,
House No. ...3-264
Gajulpet- NIZAMABAD.

सं० सम्पादक

देवीचरन मीतल

लेखराज नगर, अलीगढ़

—:*:—

सम्पादक, प्रकाशक—

नन्दू भाई

शिव साहित्य प्रकाशन

दयाल नगर, अलीगढ़

अक्टूबर १९७१ | सर्वाधिकार सुरक्षित | मू० १)

'मनुष्य बनो' की सूचना

जिन ग्राहकों पर 'मनुष्य बनो' का चन्दा बकाया है वह तुरन्त मनीआर्डर से अपना पता साफ २ लिखकर भेजदें। साथ ही यह भी लिखदें कि उनका वर्ष कब समाप्त होता है। जो बन्धु चन्दा इस समय न भेज सकें वह अपना पता साफ-साफ लिखकर सूचना देदें कि कब तक भेजेंगे।

—देवीचरन मीतल
सम्पादक 'मनुष्य बनो'
लेखराख नगर, अलीगढ़

चमकदार मोती

पिछले अंक में पृष्ट ५२ तक छापा गया है। अब इसके आगे दिया जा रहा है। चाहते थे कि इस महीने में पूरा करदें मगर पृष्ठ संख्या अधिक होने के कारण समय पर प्रकाशित नहीं हो सकता था इसलिये इसको अगले महीने में पूरा करेंगे।

धन्यवाद

श्री जैपाल कृष्ण, ४—१—१२३६ किंग कोठी रोड हैदराबाद —१ ने १५) रु० शिव की सहायतार्थ भेजे हैं मालिक उनका कल्याण करे।

—देवीचरन मीतल

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः ॥

❋ शिव ❋

वर्ष १७	अगहन सं० २०२८ वि० नौवम्बर १९७१	तरंग ९

❋ प्रार्थना ❋

अरे मन तेरी गती है न्यारी ॥
पल में मरे व पल में जीवे, पल पल होत विकारी ।
पल में दाता दानी ठहरे, पल में सहज भिकारी ॥
डोले गगन मंडल में छिन छिन, छिन में जाये पताला ।
छिन में दीन दुखी होइ जावे, छिन ही में प्रतिपाला ॥
साधक बन बन मांहि लुकाना, गुफा रुचै है न्यारी ।
बन को तज बस्ती जब आवे, तब मन है घर वारी ॥
घर बहु रूप दिखावे लीला, अपरम्पार अपारा ।
नाना रग तरंग बहे नित, गंग जमुन की धारा ॥
जो कोई याके फंद फँसाना, सौ सौ नाच नचावे ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, गुरु बल मन बस आवे ॥

बहू—'नहीं' मैं मरते मरते किसी के घर रोटी पकाने न जाऊँगी, चाहे और काम मुझे करने पड़ें। यह शूद्र का काम है। भूखों मर जाना अच्छा है परन्तु यह कभी भी पसन्द नहीं है। मैं तुम्हारा दूसरों के घर इस काम के लिये जाना पसन्द नहीं करती। ब्राह्मणी हो तो ब्राह्मणी की तरह रहो। शूद्रानी क्यों बनती हो ? हमारे बनारस में कोई ब्राह्मणी यह काम नहीं करती। अब तुम्हें भी इससे रोक रक्खूंगी। यह बड़ी ही लज्जा की बात है।'

सास चुप हो गई। वह समझ गई कि बड़े बुरे से पाला पड़ा है। वह बूढ़ी थी। उसके पास जिह्वा का हथियार था। बहू ने उसे एक दम बेकाम कर दिया। वह थोड़े ही दिनों में भीगी बिल्ली बन गई और बहू के सामने आने जाने से भी कतराने लगी। लड़ना झगड़ना तो दूर रहा, माया ने अपना सिक्का जमा लिया और बेखटके घर की मालिक बन बैठी।

दूसरा अध्याय

स्त्री पुरुष

माया ने सास को राह पर लगाया। वह छेड़ छाड़ नहीं करना चाहती थी। उसने सास को औरों के घर जाकर रोटी पकाने से रोक रखने की धमकी दी थी परन्तु वह जानती थी कि सारे जन्म का कोढ़ एक वार में नहीं जाता। यदि ऐसा किया गया तो सास थोड़े ही दिनों में स्वर्ग की राह लेगी। यह वह नहीं चाहती थी। बोल-चाल में वह जान बूझकर दोष निकालने लग गई थी परन्तु जब बुढ़िया सास इस तरह उसका लोहा मान गई तो उसने उसी समय से अपनी

जिह्वा रोक ली। नित्य सन्ध्या समय सब को भोजन कराकर वह सास के पांव दबाती. उससे इधर उधर की मीठी २ बातें कहती और जब वह सो जाती तब वह अपने पति के पास जाती। उसकी सेवा करके प्रसन्न रखती और जब वह सो जाता तब आप भी चुपके से सो रहती।

दिन निकलने के पहिले ही माया उठी, घर में झाड़ू लगाया, नहा धोकर निश्चिन्त हुई। घर ही में कुँआ था। काम के लिये पानी खींचा, चौका बर्तन पहिले से ठीक कर लेती थी। पीतल के बर्तन उसके हाथ लगने से सोने की तरह चमक उठते थे। इन सब कामों से छुट्टी पाकर थोड़ी देर पूजा पाठ में रहती, फिर रोटी पकाती। जब सास और पति उठते उन्हें नहलाती धुलाती, धोती साफ करती और खाना खिलाकर अपने-अपने काम के लिये भेज देती। फिर आप बर्तन भांड़े साफ करके पढ़ने लिखने में लग जाती।

यह उसका नित्य नियम था। सास और पति दोनों ने उसे यजमानों के घर ले जाकर मिलाया। यह गई, स्त्रियों से मिली। हाँ, नहीं, के अतिरिक्त और कोई बात मुंह से नहीं निकालती थी। चाप-लूसी नहीं आती थी। मूर्ख यजमानिनें उसे अहंकारी समझती थीं परन्तु इस बात को कोई मुँह खोलकर कह नहीं सकता था। दिल्ली में माथुर लोग सभ्यता की दृष्टि से हिन्दुओं में बहुत बढ़े चढ़े और श्रेष्ठ माने जाते हैं। उनकी स्त्रियाँ सब की सब पढ़ी लिखी और सभ्य होती हैं। माया इनकी संगत से प्रसन्न तो होती थी परन्तु यह बात उसे और हिन्दू घरानों में दिखलाई नहीं देती थी। यहाँ दो बातें थीं जिनसे वह घृणा करती थी—एक तो उनका मांसाहारी होना दूसरे अपनी गिरी हुई दशा में रहना। इसलिये इन माथुर स्त्रियों के साथ उसका पूरा प्रेम नहीं बढ़ सका। फिर भी वह इन्हें और हिन्दुओं से अच्छा ही समझती थी। माथुरों की दशा कशमीरी पंडितों जैसी है। दोनों ही समझदार और सभ्य होते हैं परन्तु दोनों

ही माँसाहारी हैं। माया को यह पसन्द नहीं था। बनारस में उसका मेल जोल जिस घर से था वह उसे आदर्श घराना समझती थी।

फिर भी वह ऐसी वैसी स्त्री नहीं थी। प्रकृति माता ने उसे अवसर से लाभ उठाने की विशेष योग्यता दे रक्खी थी। वह जान गई थी कि सास की गिरी हुई दशा के कारण वह इन स्त्रियों में बराबरी की हैसियत न पा सकेगी। इसलिये उसे उनके साथ अदब का बर्ताव करना पड़ता था। वह कभी-कभी इनके घर आती जाती रहती थी परन्तु न कभी अपने आप को उनकी आँखों से गिराया और न उन्हें अवसर दिया कि वह उस पर अपना प्रभाव डाल सकें। यह रंग रूप के ध्यान से रूपवती थी। सौन्दर्य आप जादू है जो अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। इन माथुर स्त्रियों पर उसका प्रभाव पड़ा। उसके स्वभाव को देखकर यह सब उसे गौरव की दृष्टि से देखने लगीं। आवश्यकता भी इसी बात की थी। इन स्त्रियों को पता लग गया कि माया अच्छी पंडिता है। माथुर लोग अपनी लड़कियों को पढ़ाने लिखाने का विशेष ध्यान रखते हैं। पांच स्त्रियों ने इससे अपनी लड़कियों के पढ़ाने की प्रार्थना की और एक एक घंटे के लिये दस दस रुपया महीना देने का बचन दिया। माया ने उनकी बात मान ली क्योंकि वह जानती थी कि माथुर स्त्रियाँ परदों में रहती हैं और लड़कियों को कन्या पाठशाला या किसी अध्यापिका के घर भेजना पसन्द नहीं करतीं।

दिल्ली में यह अवसर माया को कई महीनों के पश्चात् मिला। उसने अपने पति और सास से सम्मति ली। पचास रुपये महीने कंगाल घर के लिये कम नहीं होते। दोनों ने मान लिया। माया ने समयानुसार एक रिक्षा (गाड़ी) मोल ली एक नौकर रक्खा जो उसे गाड़ी पर सवार करके घरों को ले जाया करे और उसी पर लौटा भी लाये। पहिले पहिल सास और पति ने विरोध किया। अपनी निर्धनता का बहाना किया परन्तु माया माया ही थी। उसे अपनी

सहेली राजपूतनी माया से सहायता की आशा थी। उससे अस्सी रुपये उधार लिये, गाड़ी मोल ली और नौकर को एक महीने की तनख्वाह भी पहिले ही चुका दी। इस प्रकार वह अध्यापिका बन गई।

स्त्री बड़ी समझदार थी—न घर के काम काज के लिये किसी कहारिन को नौकर रक्खा न अपने बर्ताव में परिवर्तन आने दिया। सवेरे ही सब को खाना खिलाकर काम पर भेज देती और आप भी उसी समय पढ़ाने चली जाती और दिन डूबने से पहिले घर आकर फिर काम काज करके सास और पति को प्रसन्न करके सुला देती और तब आप भी सो रहती थी।

सास को तो उसने इस प्रकार पानी पानी कर दिया। उसने फिर उसे कभी न छेड़ा। वह उसका लोहा मान गई और अपने आप को भाग्यवान समझने लगीं। उसने राजपूतिनी माया से कह रक्खा था कि सास ससुर को अपनी एड़ी चोटी पर न्योछावर करेगी। यह तो उसने कर दिखाया। अब पति का मुट्ठी में लाना और उसे उँगलियों पर नचाना बाकी रह गया था। स्वभाव में उतावलापन नहीं था किन्तु सहन शीलता और धैर्य उसमें कूट कूटकर भरे थे। वह उचित अवसर की ताक में थी।

वह अवसर एक वर्ष के पीछे मिला। माया की आमदनी सौ रुपया मासिक हो गई। यह रुपया लाकर माया सास को दे दिया करती थी और उसे उसी के हाथ से खर्च कराती थी। ससुर एक दम भोला भाला और सीधा सादा था। इधर उधर जाकर यजमानों से कुछ ऐंठ लाता था। साधारण पूजा पाठ और कर्म धर्म के अतिरिक्त उसे कुछ नहीं आता था। माया उसके सामने कभी नहीं बोली परन्तु सास बहू की सुयोग्यता का हाल उससे बराबर कहा करती थी। वह इसे अपने घर की लक्ष्मी मानने लगा।

एक रात जब माया पति का पांव दबाती थी अवसर देखकर बोली, 'प्राण पति! क्या तुम अपनी वर्तमान जीवन दशा से

प्रसन्न हो ?'

'क्यों नहीं ! जिसके घर में साक्षात् लक्ष्मी आ जाय उसके भाग्य का क्या ठिकाना !'

माया लज्जित हुई, 'मैं आप से कुछ और ही बात पूछ रही हूँ।'

'वह क्या ?'

'यह काम जो आप नित्य करते हैं आपको पसन्द है या नहीं ?'

पति ने लज्जा से सर नीचा कर लिया।

माया—'यजमानों के घर इस प्रकार फेरी देना क्या आप अच्छा समझते है ?'

पति—'क्या करूँ ! ब्राह्मण के भाग्य में भिक्षा ही मांगना लिखा है। संसार का भिक्षु ब्राह्मण ही बनाया गया है। यही उसका उद्यम है। भिक्षा न मिले तो काम कैसे चले !'

माया—भिक्षा लो ! मैं नहीं रोकती परन्तु भेष बनाकर मांगो। भेष से भिक्षा भी मिलती है। यह समय और तरह का है। जो भिक्षा आप लाते हैं वह घृणा की है। उससे न आप को प्रसन्नता मिलती है न भिक्षा देने वाले ही को।'

पति—'फिर मैं क्या करूँ ?'

माया—'जो काम मैं करती हूँ क्या आप भी उसी काम को नहीं कर सकते ?'

पति—'नहीं। तू संस्कृत जानती है। भाषा की पंडिता है। मुझे न तो संस्कृत आती है न भाषा ही। पिता जी ने मुझे पढ़ाया लिखाया नहीं।'

माया—'क्या आप पढ़ने लिखने के लिये तैयार हैं ?'

पति हँसा—'अब इस जीवन में इसका अवसर नहीं रहा। तेरे आने से पहिले इस घर की क्या दशा थी—हँड़ियाँ की तेरी खपरिया की मेरी—माता जी औरों के घर जाकर रोटी पकाती थीं और पिता जी पूजा पाठ से कुछ लाया करते थे। मैं यजमानों के घर

चक्कर लगाता रहता था। जो मिला उसी पर संतोष किया।'

माया—'मैं इन बातों को जानती हूं और समझती हूँ और इनसे भी अधिक जानती बूझती और समझती हूँ। यदि आप मेरी बात मानें तो मैं कहूँ ?'

पति—'यदि मैं न मानूंगा तब भी तू मनवाकर छोड़ेगी। इस बात का मुझे पूर्ण विश्वास है। इसलिये यह प्रश्न अनावश्यक है। मानूँगा क्यों नहीं !'

माया हँसी—'यह आप कैसे कहते हैं कि मैं मनवाकर छोड़ूगी ?'

पति—'इसका दृश्य मैं देख चुका हूं।'

माया—'वह कैसे ?'

पति— माता जी मुहल्ले भर में बड़ी चिड़चिड़ी हैं। पिता जी उनसे बहुत ही तंग आगये थे। मेरा तो कहना ही क्या है ! मैं उनका इकलौता लड़का हूँ। जो मन में आया कह दिया। विवाह होने से पहिले वह मुझ पर मार धाड़ भी करती थी। अब साहस नहीं होता। इसे तू आप जानती है किस प्रकार महीनों तेरे पीछे पड़ी रहीं। तू सहन करती रही और एक ही दिन के सामना करने में उनकी बाई पच गई। अन्त में उन्हें तेरा लोहा मानना ही पड़ा। जन्म जन्म का रोग एक ही दिन में जाता रहा। जब वह इस प्रकार राह पर आगईं तो फिर मेरी क्या बिसात है जो तेरी बात न मानूं।'

माया खिलाखिलाकर हँस पड़ी—'कहते तो आप सच हैं परन्तु समझिये तो सही। यदि मैं ऐसा न करती तो क्या करती ? अब तो वह सीधी रहती हैं और घर में हर तरह से शान्ति है। मैं भी उनकी आज्ञा के बिना कोई काम नहीं करती। अब मुझ में और माता जी में कोई अनबन नहीं है।'

पति—'इससे इन्कार किसे है ? अब तू मुझे जो कहना चाहती है वह सुना दे। मैं देखूं कि मुझ से भेष बनाकर भिक्षा मांगने का काम हो सकता है या नहीं !'

माया—'बात तुम्हारे लाभ की है।'

पति—'मुझे इसका पहिले से निश्चय है।'

माया—'मैं यह चाहती हूँ कि आप कुछ दिनों मुझसे शिक्षा पायें।'

पति पांच सात मिनट तक चुप रहा, सोचता रहा कि इस शिक्षा के पेट में क्या रहस्य है? परन्तु कोई बात समझ में नहीं आई। फिर उसने कहा :—

'क्या मैं तुम से संस्कृत पढ़ूँ?'

'नहीं, अब इसका समय नहीं रहा। जीवन व्यर्थ कामों में व्यतीत करने के लिये नहीं है। संस्कृत पढ़ने से आपको कोई लाभ न होगा।'

'फिर तू मुझे क्या पढ़ायेगी?'

'केवल हिन्दी भाषा। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।'

'मैं हिन्दी जानता हूँ।'

'तुम हिन्दी नहीं जानते। दिल्ली वालों को हिन्दी नहीं आती और न पंजाब ही के रहने वाले उसे जानते हैं। इनमें से न किसी को हिन्दी बोलना आता है न यह लिखना ही जानते हैं। बनारस में रहकर मैं पंजाबियों की हिन्दी की कुछ पुस्तकें देखती रही हूँ। वह व्यर्थ ही हिन्दी जानने का अभिमान करते हैं। इन्हें तो हिन्दी की हवा तक नहीं लगी। हां! हिन्दी की चिन्दी अवश्य करते हैं और अपने ऊपर दूसरों को हँसी उड़ाने का आप अवसर देते हैं। पंजाबियों की हिन्दी की पुस्तकें यू० पी०, बम्बई, बंगाल और जयपुर आदि की ओर बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखी जाती हैं। आर्यसमाज हिन्दी का प्रचार तो कर रहा है, कुछ सफलता भी प्राप्त हो रही है परन्तु यह सन्तोषजनक नहीं है। पंजाबी आर्यसमाजी तो इतना भी नहीं जानते कि आर्यसमाज स्त्रीलिंग है या पुल्लिंग है। जब कहेंगे आर्यसमाज को स्त्रीलिंग ही बोलेंगे। इसी प्रकार न इनका उच्चारण शुद्ध है न शुद्ध लिख पढ़ सकते हैं। परमात्मा को 'परमात्मन्' और भगवान

को 'भगवन्' कहेंगे। मैं कहती हूँ कि आप को हिन्दी नहीं आती और मैं गुरु बनकर नहीं किन्तु स्त्री बनकर आपको पढ़ाना चाहती हूँ। मुझ में और आप में कोई भेद नहीं है। जो आप हैं वही मैं हूँ। मैं आपकी अर्द्धाङ्गिनी हूँ—आधी स्त्री आधा पुरुष—दोनों जुड़ मिलकर पूर्ण बनते हैं। इस प्रकार शिक्षा पाने में कोई दोष नहीं है।'

'तब मैं क्या पढ़ूँ ?'

'और कुछ नहीं मैं केवल दो पुस्तकें तुम्हें पढ़ाना चाहती हूँ—एक महर्षि शिवब्रतलाल जी की कबीर साखी, दूसरी गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण।'

'मैं तैयार हूँ। रामायण तो मेरे पास है ही। कबीर साहिब की साखी कल बाजार से लाऊँगा। इनमें से पहिले किसे पढ़ूँ ?'

'जल्दी न कीजिये। कल माता जी से ३५) उधार लीजिये। मैं पैसा अपने पास नहीं रखती। सब कुछ माताजी को दे देती हूँ यह आप जानते हैं। यदि मैं ऐसा न करती तो उनके साथ रहना महा कठिन होता। कल रुपया लेकर बाजार से एक हारमोनियम मोल लीजिये। मैं उसका बजाना जानती हूँ। आपको रात के समय धीरे-धीरे सिखा दूँगी। ईश्वर ने आपको अच्छा गला दिया है। पहिले साखी को हारमोनियम पर निकालिये। मैंने कबीर साहिब की साखी 'राधास्वामी धाम', राज बनारस से मँगवाई थी। वह मेरे पास रक्खी हुई है। इसके पढ़ने सुनने और विचार करने से आप हिन्दी के पंडित हो जायेंगे। दोहे सब याद हो जायेंगे। वह बड़े काम के हैं। इनसे बढ़कर हिन्दी भाषा के भण्डार में कोई अमूल्य रत्न नहीं है। फिर मैं आपको रामायण पढ़ाऊँगी और हारमोनियम में निकलवा दूँगी। बस इतनी ही शिक्षा देना चाहती हूँ।'

'फिर क्या होगा ?'

'जब आप इन्हें पढ़ लेंगे तब आप रामायण का पाठ सर्व साधारण में सुनाइये और देखिये क्या परिणाम होता है। यदि आपको एक

महीने के भीतर हजार रुपये न मिल जायें तो फिर माया को माया कभी न कहियेगा।'

पति ने मन में विचार किया। माया की बुद्धिमानी का सिक्का उसके हृदय में बैठ चुका था। समझ गया कि माया उसे धनवान और प्रतिष्ठित होने के अतिरिक्त सच्चा ब्राह्मण बनाकर छोड़ेगी। मन ही मन प्रसन्न हुआ और उसके विचारानुसार काम करने ही में सच्चा कल्याण दिखलाई दिया।

तीसरा अध्याय

माया-माया

माया रिक्षा पर सवार होकर लड़कियों को पढ़ाने गई हुई थी। अब उसके पास कई अच्छे घरानों की लड़कियां पढ़ने लगी थीं। पहिले वह कई घरों में पढ़ाने जाया करती थी। अब उसने एक रईस माथुर का मकान किराये पर लिया और कायदे के साथ पढ़ाना आरम्भ किया। मकान रौशनपुरा में था जहाँ माथुर कायस्थ अधिकता के साथ रहते हैं। यह ख्याल था कि शायद उनकी लड़कियाँ परदे में रहने के कारण बहुत दूर पढ़ने के लिये न जा सकें। पास रहने से इन्हें इन्कार न होगा। यह ख्याल ठीक निकला। फीस सात रुपये महीने से कम नहीं रक्खी। पहिले वह इन्हें हिन्दी वर्णमाला पढ़ाती, फिर कबीर साहिब की साखी पढ़ाती, साथ साथ हारमोनियम पर उसे निकलवाती। साखी पढ़ा लेने पर रामायण पढ़ाती थी। इन दो पुस्तकों के अतिरिक्त वह और किसी पुस्तक को हाथ तक नहीं

लगाती थी। उसकी पढ़ाई हुई लड़कियां थोड़े ही दिनों में हिन्दी अच्छी जान जाती थीं। लड़कियों के माँ बाप खुश थे। थोड़े ही दिनों की पढ़ाई में यह योग्यता ! यह उसके पढ़ाने का विचित्र गुण था। वह सब की सब सभ्य, सुशील और प्रियभाषणी हो जाती थीं। माया की प्रशंसा सारे देहली में होने लगी।

माया पढ़ाने गई थी। घर पर उसका ससुर था। एक आदमी आया और उसे खत दे गया। खत देते समय उसने कहा :—'यह जरूरी खत है किसी और के हाथ न पड़ने पाये।'

'किसने भेजा है ?'

'इसके अन्दर उसका पता लिखा हुआ है।'

'कुछ जुबानी भी तो बतलाओ।'

'हुक्म नहीं है। जो कुछ है खत में लिखा हुआ है।'

यह कहकर वह आदमी उसी समय चला गया। ससुर साहिब मन ही मन सोचने लगे—माया के साथ पत्र व्यवहार कौन करता है ? लिफाफा उठाया। नागरी अक्षरों में केवल इतना लिखा हुआ था।

'जरूरी खत, माया को मिले।'

बुड्ढे को संदेह हुआ। तरह तरह के ख्याल सताने लगे। नहीं रहा गया। लिफाफे को फाड़ डाला। उसमें लिखा हुआ था :—

प्यारी माया !

माया बहुत दुखी है। माया का इलाज माया ही के हाथ है। दूसरा कोई अब उसकी सहायता नहीं कर सकता। अगर कुछ भी माया को माया का ख्याल है तो यह खत माया के नाम कुत्ते की चाल जाता है। माया पढ़ते ही बिल्ली की चाल चली आवे। अगर माया खाने को बैठी हो तो एक दम हाथ खींच ले और मुंह धोकर झटपट माया के पास पहुँचे। वक्त तंग है। चारों ओर आग लगी

हुई है। यह आग केवल माया ही बुझा सकती है। देर होने में जान जाने का भय है।

—माया

बुड्ढा चलता पुरज़ा था। सोचा समझा, कोई बात उसकी समझ में नहीं आई। खत पढ़कर रख दिया और मन में विचार करने लगा—'तिरिया का चरित्र और पुरुष का भाग्य ब्रह्मा भी नहीं जानते। आदमी बेचारे की हैसियत ही क्या है!' और चुप हो रहा।

माया चार बजे घर पहुँची। ससुर ने कहा :—

'बहू! एक आदमी यह खत दे गया। वह घबराहट में था। जुबानी कुछ भी नहीं कह सका। मैंने बेचैनी में इसे खोलकर पढ़ लिया। कोई बात समझ में नहीं आई।'

माया ने खत ले लिया, पढ़ा। अब तक उससे कभी बात चीत नहीं की थी, सोचा कि अगर चुप रहती हूँ तो बुड्ढा क्या जाने क्या समझे! ऐसे समय में चुप रहना अन्त में दुःख का कारण होगा। साहस करके वह बोली :—

'पिता जी! यह मेरी सहेली माया का खत है। हम दोनों के एक ही नाम हैं। एक जगह जन्म हुआ, एक साथ खेली कूदीं, पढ़ो लिखीं, संयोग वश दोनों का विवाह देहली में हुआ। वह बहुत दुखी है।·········के घर व्याही है। मेरे साथ उसे प्रेम है। इसलिये बुला भेजा है। मैं उसके पास जाती हूँ, शायद जल्द न आ सकूं। माता जी से कह दीजियेगा—खाना बनाकर आप लोगों को खिला दें। मैं दिन डूबने से पहिले ही आ जाऊँगी।'

यह कहा और रिक्षा पर सवार हुई, माया के घर पहुँची। वह इसकी राह देख रही थी। देखते ही खुश हो गई।

'माया! आ गई?'

'हाँ! माया माया के पास आ गई।'

'बहिन! मैंने तुझे बेवक्त बुला भेजा।'

'क्या हर्ज है! मुझे जिस वक्त खत मिला उसी समय दौड़ती

हुई चली आई।'

'इसकी मुझे पहिले ही से आशा थी।'

'कहो ! क्या कहती हो ?'

'तुम जानती हो मेरा क्या हाल है। आज कल तुम्हारे बहनोई कलावती रानी की धुन में रहते हैं। क्या तुम किसी तरह इस मामले में मेरी सहायता कर सकती हो ? मैंने सुना है तुम रानी साहिबा को जानती हो। वह एक दिन तुम्हारी कन्या पाठशाला देखने भी गई थीं।'

'हाँ ! मैं जानती हूँ। इतमीनान रक्खो। मैं सब कुछ कर लूँगी। अब कुछ और कहने सुनने की आवश्यकता नहीं है !'

'तुम आप सयानी हो लेकिन अगर कहो तो मैं अपने दिल की बात तुम से कह दूँ।'

हाँ हाँ ! कहो। एक एक दो ही नहीं बल्कि ग्यारह भी होने हैं। मैंने तो जो कुछ दिल में सोचा है, वही करूगी। तुम जो अपने ढग पर राय दोगी वह सोने में सोहागे का काम देगी।'

दोनों सहेलियां देर तक बातें करती रहीं। बीच २ में ब्राह्मणी माया हँसती भी जाती थी और राजपूतिनी माया की आंखों और होठों पर मुसकराहट की झलक आ जाया करती थी। ब्राह्मणी माया ने कहा :—

'बहिन ! मैं तो तुझे सीधी सादी और भोली भाली समझती रही परन्तु तू तो मेरे भी कान काटने लगी। मैं मान गई कि तू बड़ी समझ बूझ वाली है।'

'आखिर मैं भी तो माया ही हूँ। फिर माया की बहिन भी हूँ।'

'अच्छा ! अब मैं घर जाती हूं। कल रानी से मिलूँगी। ऐसी बातों में मुँह खोलने का साहस नहीं होता। मैं गरीब ब्राह्मणी हूँ। अब ईश्वर की दया से दिन फिरने लगे है। रानी रानी ही है। उसके साथ मेरी बराबरी कैसी ! ऐसी बातें बहुत ही हिल मिल जाने पर होती हैं। फिर भी तू सोच न कर। मैं उससे निबट लूँगी। कभी

कभी उसके बंगले पर मैं आती जाती भी रहती हूँ। बहुत मेल जोल तो नहीं है लेकिन उसके दिल में मेरी जगह है और मैं जो कहूँगी वह खुशी से सुनेगी। मुझे आशा भी है कि स्त्री होने के कारण वह मेरी बात मान भी जायेगी।'

राजपूतिनी माया—'रानी किस ढंग की स्त्री है ?'

ब्राह्मणी माया—'स्त्री धर्म की पक्की है। विधवा है। पच्चीस वर्ष ही की अवस्था में उसका पति जाता रहा। पढ़ी लिखी होशियार है। मेमों की तरह आजादी से रहती और हर जगह आया जाया करती है। वह शिमला की रहने वाली पहाड़िनी है। इनमें परदा नहीं होता, लेकिन तुम ज नती हो स्त्री ही तो है और स्त्री मोम की नाक कहलाती है।'

राजपूतिनी माया—'फिर तो मुझे डर है।'

ब्राह्मणी माया—'तुम जो समझ रही हो वह एक दम असत्य है। मेरा आना जाना कभी-कभी रहता है। मैं उड़ती चिड़िया पहिचानती हूँ। अगर कोई और बात होती तो अब तक मैं कभी की भांप गई होती और फिर वह हजार रानी होती, रानी हुआ करे, मैं कभी उसकी ओर ध्यान तक न देती। मैं उसे अच्छी समझती हूँ और वह अच्छी है भी। अब तक उसके अच्छे होने में कोई भी सन्देह नहीं है।'

राजपूतिनी माया—'फिर नित्य के आने जाने का क्या कारण है ?'

ब्राह्मणी माया—'उसे टेनिस खेलने का शौक है। मेमें यह खेल बहुत खेला करती हैं। आने जाने का कारण भी यही है। इसके सिवा और कोई बात नहीं है। वह तो किसी मर्द को मुँह भी नहीं लगाती। कल मैं जाऊँगी, फिर देखूंगी कि क्या बात है। आप ही सब कुछ मालुम हो जायगा।'

चौथा अध्याय

माया और घर का सुधार

राजपूतिनी और ब्राह्मणी माया मिलीं। एक से दो या ग्यारह हुईं। दोनों मिलकर सोचती रहीं। शाम से पहिले यह घर आई। बुड्ढी सास ने परांठे बना रक्खे थे। किसी ने अब तक खाया पिया नहीं था। इसे बहुत देर भी नहीं हुई थी। राजपूतिनी ने कुछ पकवान और फल साथ कर दिये थे। बुड्ढे बुड्ढी उन्हें देखते ही खुश हो गये। उसने हाथ पांव धोये और सन्ध्या-बन्दन किया। फिर सब को अपने हाथ से खाना खिलाकर आप भी खाया।

रात को जब माया सास का पाँव दबाने आई, कहने लगी:—

'माता जी! मैं अपने बचपन की सहेली से मिलने गई थी।'

'मैं जानती हूँ। नन्हे के बाप ने मुझे बता दिया था।'

'कल सुबह मैं भी जाऊँगी। मेरी सहेली बहुत दुखी है। किसी दिन तुम्हें भी ले चलूँगी।'

'फिर सुबह रोटी कौन पकायेगा?'

'यही तो मैं फिर सोचती हूँ! नीयत है घर में एक मजदूरनी रखली जाये और किसी मिसरानी को रोटी पकाने के लिये नौकर कर लिया जाये। ऐसा जान पड़ता है कि अब मुझे इन कामों के लिये समय न मिल सकेगा।'

बुढ़िया की जान निकल गई।

'बहू! जब से मैं आई हूँ इस घर में कोई नौकर नहीं रक्खा गया। मुझ से पहिले भी यही बात थी। जब मेरे सास ससुर जीते थे तो ससुर जी तो जब नहाने जाते थे दो-चार घड़े पानी के भर लाते थे। सास जी माथुरों के घरों में रोटी पकाती थीं। मैं घर की रोटी पकाती थी। काम इस तरह होता रहा। अपनी बारी पर सास

ससुर के मरने पर हम दोनों उनका काम करने लगे और जहाँ-जहाँ सास जी नौकरी करती थीं मुझे वहां का काम मिल गया। रोटी पानी का काम या तो तेरे ससुर जी करते थे या नन्हा कर लिया करता था। अब तू आ गई। घर के काम से मुझे छुट्टी हो गई। जो बात इस घर में नहीं हुई वह तू कैसे करेगी! इसके सिवा नौकरों को तनख्वाह देनी पड़ेगी। वह मुफ्त में रुपया ले जायेंगे और साथ ही चोरी भी करेंगे। ना बहू! ऐसा काम कभी न करना!'

माया हँसी—'माता जी! वक्त वक्त की बात है। यह काम तुमको उस वक्त करना पड़ता था जब घर में रुपये पैसे की कमी थी। अब मैं पाठशाला से काफी रुपये लाती हूँ। घर के इस छोटे से काम में पड़ी रहूँगी तो हमारे दिन न फिरेंगे। जो वक्त रोटी पानी में लगता है वह अगर और अच्छे काम में लगाया तो और ज्यादा रुपया आता रहेगा। अगर नौकर दस बीस रुपये महीने में ले गये तो क्या हुआ? सोचो तो सही! अगर मैं पचास रुपये और लाई और उसमें से बीस रुपये नौकरों को तनख्वाह दी गई तो तीस रुपये की फिर भी बचत होगी। तुमको घर बैठे सत्तर अस्सी रुपये मिलेंगे। यह अच्छा या वह अच्छा! अगर कहो तो कल सुबह से कोई और नया काम छेड़ दूँ और तुम्हारा घर देखते देखते माला माल हो जाये।'

बुढ़िया सोच विचार में पड़ गई। एक ओर रुपयों की लालच दूसरी ओर नौकरों की तनख्वाह देने की फिक्र! वह गहिरे सोच में पड़ गई।

माया बोली—'मैं चाहती हूँ कि तुम अब घर में रहो, बाहर न जाओ और पिता जी भी घर में रहकर भगवान का भजन करें।'

'और यजमान क्या करेंगे? क्या उनका घर छोड़ दिया जाये! बहू ऐसा कभी न करना। हीरा जल्द खर्च हो जाता है। झरा बराबर जारी रहता है। मुझसे तो यह न होगा कि यजमानी का काम छोड़ दूँ।'

'यह मैं नहीं कहती ! मेरा मतलब यह है कि यजमानी का काम तो होता रहे, केवल पिता जी कभी २ उनके घरों में चक्कर लगा दिया करें। तुम अब किसी के घर रोटी बनाने न जाओ। जो कुछ तुमको इस काम से मिलता है उससे कहीं ज्यादा मैं हर महीने में लादूँगी।'

'और नन्हा क्या करेगा ?'

'मैं उनको पढ़ा रही हूँ। वह कम से कम पांच सौ रुपया महीना लाया करें।'

'बहू की भोली भाली बातें ! नन्हा को आता क्या है ? वह पांच सौ रुपये महीना पैदा करे ! यह भला कब हो सकता है ?'

माया हँसी—'जब लक्ष्मी आने को होती है छप्पर फाड़कर आती है और छप्पर फाड़कर देती है। तुम देखती चलो, मैं किस तरह तुम्हारे घर को थोड़े ही दिनों में धन दौलत से भर देती हूँ !'

'और जब तू बाल बच्चे वाली होगी तब की बात कह !'

'उस वक्त देखा जायगा।'

'अच्छा बहू ! जो तेरे जी में आवे कर लेकिन हमारी यजमानी न छुड़ा। सैकड़ों वर्ष से यह काम होता आया है और मुझे भी माथुरों के घर रोटी पकाने के लिये जाने दिया कर। यह रहे। मैं तुझे रोकती नहीं, तू सुबह बाहर जाने वाली है। जा, मैं रोकती नहीं। आने वाली लक्ष्मी के लिये घर का द्वारा कौन बन्द करता है ! मैं तेरी तरह कल से तड़के उठा करूँगी और रात के रहते रहते सब कुछ कर लिया करूँगी। तू जाकर सो रह। मैं नन्हे के बाप के पास जाकर उनसे पूछती हूँ देखूँ वह क्या राय देते हैं।'

माया खुश हुई क्योंकि वह जानती थी पुराने संस्कार का एक दम छोड़ना खेल नहीं है लेकिन किसी तरह वह समझा बुझाकर सास को राह पर लाई। उसे आशा हो गई कि वह इसका कहना मान जायेगी।

सास को छोड़कर वह पति के पास गई और उसे साखी और

रामायण का सबक देकर सो रही। उसने यह काम कई सप्ताह पहिले से आरम्भ कर रक्खा था। उसका पति बराबर पढ़ने लिखने में उन्नति भी करता जाता था। माया को विश्वास हो गया कि वह थोड़े ही दिनों में हिन्दी का अच्छा पंडित बन जायेगा।

पांचवाँ अध्याय

माया और कमलावती रानी

दूसरे दिन माया स्नान ध्यान और पूजा पाठ के पश्चात् कमलावती के बंगले पर पहुंची। रिक्षा वाले को अस्पताल में गाड़ी ले जाकर रखने की ताकीद की और आप रानी के पास गई। वह चाय पी रही थी। स्त्री होने के कारण अन्दर बुला ली गई।

कमलावती ने कहा–'कई दिन के बाद आई हो। चाय पियोगी?'

माया हँसी—'आप जानती हैं मैं बनारस की रहने वाली हूँ जो छूत छात का घर है। इसके सिवा मैं सीधी सादी ब्राह्मणी हूँ। अब तक कभी चाय को मुँह नहीं लगाया है और अच्छा भी है। आदमी जितना ही इनसे बचता रहे उतना ही अच्छा है। यह कोई जरूरी चीज तो नहीं है।'

कमलावती—'लेकिन मैं तो पहाड़ में रहती हूँ। वहां दिन में कई बार लोग चाय पिया करते हैं। हम लोगों के लिये यह बहुत जरूरी चीज है।'

माया—'सच है लेकिन देहली शिमला तो नहीं हैं। पहाड़ में सरदी होती है। यहां गर्मी रहती है और हमारे बनारस में तो कोई चाय को छूता तक नहीं। वहाँ इसकी एक दम जरूरत नहीं है।'

कमलावती—'मैंने बनारस नहीं देखा। इस साल जाने का विचार है। अगर तुम मेरे साथ होतीं तो क्या ही अच्छा होता !'

माया—'मुझे कोई इन्कार तो है नहीं। गृहस्थी का झमेला दिन रात लगा रहता है। सास ससुर और पति की आज्ञा माननी पड़ती है। लेकिन जब वह सुनेंगे कि मैं आप के साथ जाने वाली हूँ उन्हें भी इन्कार न होगा। हाँ ! मुझे ६ महीने पहिले इत्तला मिलनी चाहिये जिससे पाठशाला के काम में कोई ख़राबी न पड़े और वह मेरे पीछे भी जारी रह सके। मैं घूम फिर कर आपको बनारस दिखलाऊँगी, विश्वनाथजी का दर्शन कराऊँगी, दुर्गा, अन्नपूर्णा और अनेक तीर्थ स्थानों और घाट-घाट की सैर कराऊँगी। आप खुश हो जायेंगी। बनारस भारतवर्ष का बहुत ही पुराना शहर है। शिवजी की कमान पर बसा हुआ है। जब दुनियां में प्रलय आती है काशीजी को कोई हानि नहीं पहुँचती। विश्वनाथ जी आप उसकी रखवाली करते हैं।'

कमलावती मुस्कराई। वह पढ़ी लिखी और नई रोशनी की गोद में पली थी। माया के धार्मिक विश्वास की बातें सुनकर वह चकित हुई परन्तु वह जानती थी कि उसे पश्चिमी सभ्यता की हवा नहीं लगी है और पुराने सनातनी भाव उसके रग रग में भरे हुये हैं।

रानी चाय पी चुकी। माया का हाथ पकड़कर बैठक में लाई और बोली :—

'कहो ! कैसे आई हो ?'

'मैं ब्राह्मणी हूँ यह आप जानती हैं। आप क्षत्रानी हैं। इसका भी आपको ज्ञान है। भिक्षुक का भेष ही उसके भाव को बतलाता है। मैं आप के पास भिक्षा मांगने आई हूँ।'

'मुझे आप ख्याल था कि तुम्हारी पाठशाला के लिये कुछ भेज दूँ। भूल गई क्षमा करना।'

'मैं पाठशाला के लिये सहायता मांगने नहीं आई हूँ। यह आप

की दया है जो आपको इतना ध्यान है। वह पाठशाला मेरी अपनी है। लड़कियों से फीस लेकर पढ़ाती हूँ और उससे मेरा काम चल जाता है। मैं खास किस्म की भिक्षा मांगने आई हूं।'

रानी को आश्चर्य हुआ।

'वह क्या है ?'

'वह बहुत नाजुक बात है। जब तक आप माफ करने का वादा न करेंगी मैं जुबान नहीं खोल सकती और साथ ही मुँह मांगी मुराद मांगने आई हूँ। मैं सुना करती थी कि क्षत्री राजे मुँह मांगी मुराद देते थे। आप भी क्षत्रानी और रानी हैं। अगर यहाँ से नामुराद गई तो मेरी उम्मीदों पर पानी पड़ जायेगा।'

लेकिन तुम समझती हो जब तक किसी को कुछ मालुम न हो वह क्या जबाब दे सकता हैं !'

'मैं क्या कहूँ ! कुछ कहते नहीं बनता। कहती हूँ तो जुबान नहीं खुलती और अगर नहीं कहती हूँ तो एक आदमी की जान जाती है।'

रानी देर तक सोचती विचारती रही।

'कहो ! निर्भय होकर कहो ! मैं तुम्हारी इज्जत करती हूँ। तुम पवित्र देवी हो। अगर ऐसी न होतीं तो जो नेक काम तुम कर रही हो, कभी तुम से न हो सकता और न तुम्हें इस तरह मेरे पास आने का हौसला होता। अब मैं तुम को कहने की इजाजत देती हूँ। कहो ! जो कुछ मुझ से हो सकेगा मैं तुम्हारे लिये करूँगी। इसका पूरा-पूरा विश्वास रक्खो।'

माया की आँखों से आंसुओं का तार बँध गया। उसने आंचल से उन्हें दो तीन बार पोंछ लिया।

'विश्वनाथ जीं आप का भला करें ! मैं ऐसी ही आस लेकर आई थी। अब आप से कहने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है।'

'कहो ! फिर अब देर न करो। मेरे टेनिस खेलने का वक्त आ रहा है।'

'सुनो रानी ! मेरी एक बचपन की सहेली है। उसका नाम म है। वह बड़ी ही सीधी सादी और भोली भाली है। दुनियाँ में अगर कोई अच्छा हो सकता है तो बस इतना ही अच्छा हो सकता है। बाकी सब कहने सुनने की बातें हैं। मेरी तरह वह भी बनारस में पैदा हुई। बहुत बड़े राजपूत घराने की लड़की है। वहां उसका भी मेरी तरह विवाह हुआ। रंग रूप साधारण है लेकिन जरा काली है। आज विवाह हुये पूरे चार साल हुये। उसके पति ने काली होने की वजह से उसे एक दम छोड़ रक्खा है, बात तक नहीं करता। जिस दिन उसने उसकी घूँघट खोल कर देखा बहुत ही झल्लाया और बुरा भला कहा। वह घर में रहकर कुढ़ती रहती है। वह यह भी नहीं चाहती कि उसका पति उसे आदर सत्कार से रक्खे। उसने उसे दूसरी शादी करने की इजाजत भी दे रक्खी है। वह केवल इतना चाहती है कि उसे कहारनी या नौकरानी की हैसियत में पति की सेवा करने का अवसर मिले। इससे अधिक वह और कुछ नहीं चाहती। यह काम अगर आप चाहें तो कर करा सकती हैं। दूसरे से यह एक दम असम्भव है।'

रानी ने पूछा—'वह कहाँ रहती है? और उसके पति का क्या नाम है?'

माया ने उत्तर दिया—'पति का नाम ब्रह्मासिंह है और वह चावड़ी बाजार की गली में रहता है।'

'इस नाम का एक राजपूत लड़का मुझे टेनिस खेलाने आया करता है। क्या कहीं वही तो नहीं है?'

'हाँ वही है।'

कमलावती ने कुछ देर सोचा, फिर मुस्कराई—'तुम ने मुझ से वादा करा लिया वरन् मैं तो इन्कार कर जाती। ऐसी बातों में दखल देने से बदनाम होने का डर रहता है। लेकिन तुम परोपकार के भाव को लेकर आई हो। यह एक तरह का यज्ञ है। तुम पुरोहितानी हो।

मैं खुशी से यजमानी बनने का इकरार करती हूँ। इस काम को मैं बड़ी खूबसूरती के साथ कर दूँगी। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। क्या यह माया मुझे जानती है ?'

'वह आपको नाम से जानती है। मैंने ही उसको आप का नाम बताया है।'

रानी फिर थोड़ी देर तक सोचती रही।

'अच्छा ! अपनी सहेली को मेरी ओर से विश्वास दिलाओ। तुम भी इतमीनान रक्खो लेकिन कोई तीसरा इन बातों को न जानने पाये। अब ब्रह्मासिंह आने ही को है। मैं उसे समझाऊँगी। तुम इतना करदो कि माया शाम के वक्त तुम्हारे साथ आकर मुझ से मिले। मैं उससे तुम्हारे सामने बात-चीत करूँगी। मेरा मोटर परदे दार है। तुम दोनों उस पर आ सकती हो।'

'मैं मोटर के लिये आपको तकलीफ देना नहीं चाहती। इसका प्रबन्ध मैं आप कर लूंगी।'

रानी उठी, बक्स खोला, सौ रुपये निकाल कर माया को देने लगी—'यह तुम्हारे स्कूल के लिये भेंट करती हूँ।'

'मैं इसके लिये नहीं आई थी। अगर मेरी सहेलनी की मदद आप ने करदी तो हम दोनों को बिना दाम की अपनी बांदी बना लिया। आप की यह सहायता लाखों रुपये की खैरात से बढ़कर है और इसका आप को बहुत कुछ फल मिलेगा।'

'मैं इसे समझती हूँ लेकिन अगर तुम इसके लेने का इन्कार करती हो तो मेरे दिल को ठेस लगेगी। मुझे अभी तुम से बहुत सी बातें सीखनी हैं। शिमला जाकर मैं भी लड़कियों की पाठशाला में साखी और रामायण की रिवाज दूँगी। हिन्दी सीखने के लिये यही दो पुस्तकें बहुत हैं।'

माया ने सौ रुपये ले लिये। दोनों स्त्रियाँ देर तक हँस हँस कर बातें करती रहीं। यह बिदा होकर घर आई। सौ रुपये सास को

देकर बोली—'शिमला की रानी ने पाठशाला की सहायता के लिये दिया है। यह लीजिये और अब मुझे घर के रोटी पानी के काम से छुट्टी दीजिये।'

बुड्ढी फूलकर कुप्पा होगई। माया खाना खाकर स्कूल गई और उस दिन से उसकी सास उसकी टहलनी बन गई।

छटवाँ अध्याय

कथा वांचने वाला पंडित

वक्त जाता है वक्त आता है। बुरे भले दोनों वक्त जाते हैं और बुरे भले दोनों वक्त आते रहते हैं। अगर आदमी चाहे तो बुरे वक्त को भगा सकता है और अच्छे वक्त को ला सकता है। इसके लिये साहस, उत्साह और पुरुषार्थ से काम लेने की देर है। अगर आदमी अपाहिज और निकम्मा है तो बुरा वक्त उसके सर पर बराबर सवार रहेगा और अच्छे दिन कभी न आयेंगे।

माया कंगाल ब्राह्मण के घर आई और उसे दौलतमन्द बना दिया। शास्त्रों ने सच कहा है कि स्त्री शक्ति है। इसके शक्ति होने में क्या सन्देह है! यह महाबलवान शक्ति है। इस बलवान शक्ति ने सास ससुर को अपना मातहत और मुहताज बना लिया। युक्ति से काम लेने की देर थी। इसके सिवा और क्या था! सूझ सूझ गई और काम बन गया।

जिस लड़के को माया की सास सयाना होने पर भी नन्हा कहती थी और जो माया का पति था, एक सप्ताह के अन्दर देहली में

पंडित मशहूर हो गया और अब वह नन्हा नहीं रहा।

देहली की गली कूचे में इश्तहार बाँटे गये कि..... तारीख को सात बजे शाम से गुण वाले सेठों से मन्दिर में तुलसी कृत रामायण की कथा हारमोनियम पर सुनाई जायेगी और कथा के पश्चात् २० मिनट शंका समाधान के लिये दिये जायेंगे। इश्तहार देने की देर थी। उस दिन पांच सौ से कुछ अधिक मनुष्य कथा में आये।

कथा बांचने वाला एक गोरी रंगत का नवयुवक था—नंग, धिड़ँग, गले में सूत की जनेऊ पड़ी हुई, कमर से रेशमी धोती बँधी हुई, ललाट पर मलयागिर चन्दन का तिलक लगा हुआ! माया बड़ी ही समझदार स्त्री थी। इश्तहार से यह नहीं पता लगता था कि पंडित देहली ही का रहने वाला है। संसार की दशा विचित्र है। नई बस्तु में आकर्षणशक्ति होती है चाहे वह सड़ी गली ही क्यों न हो। घर की मुर्गी साग बराबर! घर का योगी योगना आन गांव का सिद्ध! घर की खाँड़ किरकिरी बाहर का गुड़ मीठा! घर की स्त्री चना चबाय, बाहर की राँड़ मालपुये उड़ाये! माया इन सब बातों को जानती थी इसलिये इश्तहार में नन्हा के नाम के सामने देहलवी का शब्द नहीं लिखाया—केवल नन्हेलाल जी गौड़ मशहूर किया।

जब भीड़ लग गई पंडित ने हारमोनियम हाथ में ली। पहिले मंगलाचरण के संस्कृत श्लोक पढ़े फिर 'जेहि सुमिरत सिद्ध होय.....' सोरठा गाकर सुनाया। वह ऊँची जगह चौकी पर बैठा था। सुनने वालों के लिये जाजिम का फर्श बिछा हुआ था। चौकी पर वह विराजमान दिखलाई देता था जैसे शिव भगवान गौराङ्ग-शरीर धारण करके आये हैं और जब उसने हारमोनियम पर गाना आरम्भ किया नारद जी की मूर्ति बन गया। लोग सुनकर दंग रह गये। और जब वह सोरठा की व्याख्या करने लगा उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो उसकी जिह्वा पर सरस्वती, सावित्री और

ब्राह्मणी तीनों एक साथ गायत्री (तीन प्रकार के गाने) का रूप धारण करके आ गई है। गला क्या था मनमोहन कृष्ण की बांसुरी थी। एक सोरठा पढ़ा, अर्थ किया, साथ ही कबीर साहिब के दोहे भी जगह जगह सुना दिये। ऐसा मालुम होता था कि महात्मा तुलसीदास जी और परमसत कबीर साहिब दोनों एक साथ इस कंगाल भिखारी को कुबेर बनाने पर तुले हुये हैं। एक सोरठे की व्याख्या इस तरह पूरी हुई। दो मिनट के लिये कथा बांचने वाला चुप होकर दम लेने लगा। श्रोतागण आपस में पूछने लगे—'यह कौन पंडित है ? कहाँ से आया है ? हम ने तो ऐसी कथा आज तक कभी नहीं सुनी थी।'

पंडित दम ले चुका। फिर दूसरा सोरठा हारमोनियम पर गाकर अर्थ करने लगा। क्या मजाल ! कोई दम तो मारे। सब के सब कान और आंख बन गये। आंखें सब की उसी पर डटी थीं और कान उसके बचन को ध्यान के साथ सुन रहे थे।

इस तरह उसने सोरठों की व्याख्या समाप्त की।

माया ने अपने दो चार आदमियों को साधक बना रक्खा था, वह झुके, पांच पाँच रुपये खनाखन चौकी पर फेंके। इनकी देखा देखी कथा सुनने वालों ने रुपयों की वर्षा करदी। जब यह हो चुका पंडित ने सब को सुनाकर कहा—'सज्जन पुरुषो ! कल इसी जगह, इसी समय पर, इसी प्रकार फिर कथा होगी। अपने प्रेमी मित्रों को सूचित कर देना। आप लोग जा सकते हैं। जिनको मुझ से कुछ प्रश्न करना है वह बैठे रहें। बीस मिनट में इस काम के लिये दे सकता हूँ।'

माया ने उसे समझा रक्खा था कि बिना रुपये वसूल किये हुये प्रश्नोत्तर आरम्भ न करना और स्त्रीव्रत पति ने वैसा ही किया। लेकिन कथा से जाने का नाम किसी ने नहीं लिया। कुछ आर्यसमाजी आये थे। उनमें से एक आगे आया और बोला—'मैं प्रश्न करता हूँ।'

नन्हेलाल जी बोले—'मैं प्रेम के साथ आपको समझाने के लिये

तैयार हूँ।'

आर्यसमाजी ने कहा—'गणेश की मूर्ति लाल, सूण्ड वाली, चार हाथ और चूहे पर सवारी करने वाली क्या कपोल कल्पित नहीं है? विष्णु की मूर्ति साँवली क्षीर-सागर में शेष नाग पर लेटी और गरुड़ पर चढ़ने वाली क्या ढोल का पोल नहीं है? शिव की मूर्ति उजली, भस्म लगाये, जटा बढ़ाये, ललाट पर चन्द्रमा, बैल की सवारी नीला कण्ठ, सांप कनखजुरा लपेटे, सर से गंगा बहाये क्या पोप का स्वांग और पोप की लीला का राग नहीं है? यह सब झूंठी बातें हैं। इनका उत्तर दीजिये।'

नन्हेलाल बोले—'सुनो भाई! जुबान सँभाल कर बोलो। देवताओं को बुरा न कहो तब मैं समझाऊँगा। सावधान होकर सुनोः-

गणेश जी कर्म के देवता हैं। इसलिये उनके चार हाथ और एक सूँड है। कर्म करने वाले को हाथी की तरह बलवान होना चाहिये। इसलिये ऐसा रूप दिया गया, परिश्रम या मेहनत के समय खून सारे शरीर में दौड़ता है और शरीर में सुर्खी की झलक दिखाई देती है। सेंदूर लगाने का यह कारण है। काम करने वाले का मन चूहे की तरह नाचता रहता है। इसलिये उनकी सवारी चूहे की है।

विष्णु भगवान भक्ति के देवता हैं। प्रेम भक्ति का रंग सांवला है। दूध की तरह भक्त का हृदय निर्मल रहता है। इसलिये वह क्षीर सागर में रहते हैं। भक्त हजार जुबान से भगवन्त की स्तुति गाने से नहीं थकता। इसलिये शेष नाग का यह रूप बतलाया गया। प्रेमी का हृदय ऊपर की ओर गरुड़ की तरह मँडलाया करता है। इसलिये उनकी सवारी वैसी है।

शिव जी महाराज ज्ञान के देवता हैं। ज्ञान प्रकाश है। इसलिये उनका शरीर कुंद के फूल की तरह है। ज्ञानी एक बात को सुनकर बार-बार विचारता है। इसलिये शिव जी की सवारी में बैल है जो खा पीकर बार-बार जुगाली करता है। ज्ञानी दूसरों की बुराई नहीं

प्रकट करता। उसे कण्ठ में ले लेता है। इसलिये उनका नाम नील कण्ठ है। ज्ञानी दुख से नहीं घबराता। इसलिये शरीर में साँप कनखजुरे लपटे रहते हैं। ज्ञानी अकामी होता है। उसके ललाट पर कांति और ओजस चमकती रहती है। वही चन्द्रमा है। ज्ञानी के दिमाग में ज्ञान का सोता है। यही गंगा है।

इनको कपोल कल्पित और ढोल का पोल या पोप का स्वांग न कहो। यह अलंकार हैं। वेद शास्त्र पुराण सब के सब अलंकारों से भरे हुये हैं। रामायण में भी यही बात है। बीस मिनट गुजर गये। अब इससे अधिक बात-चीत नहीं हो सकती। कल फिर कथा में प्रश्न करने के लिये समय दिया जायगा।'

मन्दिर वाले सेठजी इस व्याख्यान और अर्थ से इतने प्रसन्न हुये कि उसी समय सब के सामने सौ रुपये का नोट निकालकर पंडित को भेंट कर दिया। कथा सुनने वाले सब के सब प्रसन्न होकर अपने अपने घर गये। पंडित जी भी गये। कई सौ रुपये मिले थे। सब का सब बुढ़िया के सामने लाकर रख दिया। वह फूली नहीं समाई।

दूसरे दिन सारे देहली में नन्हेलाल की पंडिताई की धूम मच गई। कई हजार आदमी आये। जाजिम का फर्श काफी नहीं था। कई दरियां बिछाई गईं। पंडित को आज ऊँची लम्बी चौड़ी मेज पर बिठाया गया। हौसला बढ़ जाने के कारण उस दिन की कथा पहिले दिन से भी कहीं रसीली थी। भेंट भी खूब चढ़ी।

इसी तरह सात दिन तक बराबर कथा होती रही। सारी देहली टूट पड़ी। सब ने अमृत-रस पिया। कई हजार रुपये पंडित को मिल गये।

आखिरी दिन कथा और प्रश्नोत्तर की समाप्ति पर पंडित नन्हेलाल ने अपने श्रोतागणों से कहा—'प्रेमियो! इस अवसर पर मुझे रामायण की चाशनी चखानी मन्जूर थी। इसलिये सात ही दिन का संकल्प था। आप इस कथा से प्रसन्न हुये यह मेरा सौभाग्य

है। फिर जब मुझे कथा सुनाना होगा आप को खबर दूँगा।'

सब लोग प्रपन्न होकर अपने २ घरों को गये और बहुत दिनों तक इस कथा की चर्चा होती रही।

माया खुश ! नन्हे खुश ! सास समुर सभी खुश !

माया—'क्यों माता जी ! अब तो आप का पूत सपूत हो गया ! अब घर में मजदूरिन और कहार रखने की आज्ञा दोगी या नहीं ?'

सास—'बहू ! तू लक्ष्मी है। यह मैं समझ गई लेकिन मैं अब भी नौकर और मजदूरिन रखना मुनासिब नहीं समझती।'

माया—'क्यों ?'

सास—'सनातन से चला आया है वही लकीर पीटनी है। तेरे ससुर और नन्हा पानी भर लिया करें। घर का काम काज मैं आप करूँगी। तुझे रोटी न बनाने दूँगी। इससे अब तुझे छुट्टी हो गई। तू जिस तरह चाहे रहा करे। जो बात इस घर में पहिले नहीं हुई है वह मेरे जीते जी न होगी। यह बातें माथुरों और अग्रवालों को शोभा देती हैं।'

माया—'आखिर कोई कारण भी तो हो ?'

सास—'हम ब्राह्मण हैं। अपना काम आप अपने हाथों से करेंगे। किसी के मुहताज न बनेंगे। आज तक अपने हाथ की रोटी खाई है। इसी में उम्र खप गई। दूसरे के हाथ की रोटी अब मरते मरते क्या खाऊँ ! यह जी को न भायेगा। जैसे सीधी सादी तरह से रहते आये हैं वही अच्छा है। मैं बैठी हुई क्या करूँगी ? जी कैसे लगेगा ! जो आदत पहिले से पड़ी है वह कैसे छूट सकती है ?'

माया—'माता जी ! आप सच कहती हैं। मैंने इस पर पहिले नहीं सोचा था। आप में बड़ी बुद्धि है मैं कल की लड़की हूँ। मुझ में इतनी समझ नहीं है। मैं बड़े घरानों को देखकर उनकी रीस करने लगी थी। अब बात समझ में आ गई। सादा जीवन अच्छा होता है लेकिन क्या अब भी आप माथुरों के घर पूरी परांठे बनाने

जाया करेंगी ?'

सास हँसी 'क्यों न जाऊँगी ? जब तक दो चार घर घूम फिर न आऊँगी दिन कैसे कटेगा ? हाँ तुझ से घर का काम काज न लूंगी। यह मैंने सोच लिया है।'

माया—नहीं माता जी ! कल से घर की रोटी मैं ही बनाया करूँगी। यह स्त्री का मुख्य काम है। हां, अगर और तरह का काम सर पर आ गया तो दूसरी बात है। उस दिन आप रोटी बना दिया करना। जब आप इतना काम कर सकती हैं तो मुझे काम करने में क्या हर्ज है ? मैं तो अभी लड़की हूँ। आप लोगों की सेवा करूँगी और स्कूल में पढ़ाने भी जाया करूँगी।'

सास—'तू बड़ी भाग्यवती है। मैं तेरे समझाने योग्य नहीं हूँ।'

माया—'मैंने तुम्हारे लिये एक यजमान घर और निकाला है। जैसे सब जगह जाती हो वहां भी आया जाया करो। वह लोग तुम्हारा आदर सत्कार करेंगे। मेरी सहेली माया उसी घर में रहती है। बनारस में उसके मां बाप मेरे बाप के यजमान थे।

सास—'क्या हर्ज है ? जब तू चलेगी मुझे भी साथ ले चलना लेकिन मैं तेरी गाड़ी रिक्षा पर न बैठूंगी ! मर्द के कन्धे पर चढ़ना मुझे पसन्द नहीं है।'

दूसरे दिन माया ने रिक्षा गाड़ी बेच दी और गाड़ीवान को स्कूल का चपरासी बना लिया।

तीसरा भाग

पहिला अध्याय

दुखभंजन नाथ

आदमी का दिल भी एक विचित्र वस्तु है। सब का पता लगता और लग सकता है लेकिन जिसकी समझ नहीं आती वह दिल ही है। कभी यह इतने ऊँचे चढ़ जाता है कि ईश्वर तक की परवाह नहीं करता और कभी ऐसा नीचे उतर आता है कि इसकी दुष्टता की कोई गिन्ती नहीं रहती। ब्रह्मासिंह पढ़ा लिखा आदमी पंजाब यूनिवर्सिटी का ग्रेजुऐट, माँ बाप का लाडला और अँग्रेजी सभ्यता का प्रेमी था। उसे दुनियां का अनुभव नहीं था फिर भी दिल तो रखता था।

माया को उसने इतनी इजाजत तो दे रक्खी थी कि उसके पाँव को हाथ लगा सके और वह भी सिर्फ एक बार के लिये। जब माया बिदा होकर चली गई वह सोचने लगा—'यह मेरी स्त्री है। मैं इसका पति हूँ। दुनियां यही समझती है। यह भी बेकसूर है और मैं भी बेकसूर हूँ। यह सीधी सादी है। मैं इसे देखकर घबराता हूँ। पास रहने तक को जी नहीं चाहता। ऐसा क्यों है? हम दोनों का दिल मिलता क्यों नहीं है? मुझे इससे क्यों घृणा है? और इसे मुझ से क्यों प्रेम है? यह रहस्य समझ में नहीं आता। मैंने पहिली ही रात उसका अपमान और अनादर किया। उसने उसे सह लिया। मैं एक दूसरी स्त्री के पीछे पड़ा उससे कई रातों मिलता रहा। आठवें दिन क्यों उसने मुझे बुरा भला कहकर अपने यहाँ आने से रोक दिया? इसमें क्या भेद है? क्या माया के अपमान करने का ईश्वर ने मुझे दण्ड दिया! इसके सिवा और कोई बात समझ में नहीं आती।

अगर यह बदला है और मेरे कर्मों का फल है तो अब मेरा ध्य माया की ओर क्यों नहीं जाता ? मैंने अपने स्वभाव को भी बदलना चाहा, वह क्यों नहीं बदलता ? अब इसी में कुशल है कि मैं देहली को कुछ दिनों के लिये छोड़ दूँ।' रात भर यह ख्यालात उसे सताते रहे।

सुबह हुई, क्लर्क बाबू आया, असबाब बांधा गया। ब्रह्मासिंह मां बाप दोनों के पांव पड़ा। उन्होंने आशीर्वाद दी। यह मोटर पर सवार होकर स्टेशन पहुँचा, अजमेर का टिकट लिया और रेल पर सवार हो गया।

अजमेर राजपूताने का फाटक है। सारे राजस्थान की सभ्यता और राजपूती आन बान का नमूना ! पहिले यह चौहान राजाओं की राजधानी थी। मुसलमान आये। इनको उस समय तक राजाओं पर सिक्का जमाने का अवसर नहीं मिला था जब तक अजमेर की ओर ध्यान नहीं दिया गया। यहाँ ख्वाजा मुइनउद्दीन चिश्ती एक मुसलमान फकीर ने अपनी चटाई बिछाई। अकबर बादशाह उसका श्रद्धालु बना। इस युक्ति से उसने अजमेर पर अपना दबाब डाला। सारे राजे एक एक करके उसकी मातहती में आते गये। उदयपुर का राना ही एक अकेला रह गया था जिसने उसकी जाल में फँसने से साफ इन्कार कर दिया। फिर भी अकबर अपना काम बना ले गया। यही चाल अँग्रेज चले और देहली के राजधानी बनाने की तह में यही बात छुपी हुई है। आगे चलकर क्या होगा यह अभी नहीं कहा जा सकता। सम्भव है कि अँग्रेजी राज में कुछ दिनों पीछे एक ऐसी चौड़ी नहर निकाली जाये जो किराची अजमेर और देहली को मिलाकर एक करदे। फिर विलायत से जहाज किराची होते हुये देहली आने लगेंगे और इससे वृटिश गवर्नमेन्ट की जड़ सदैव के लिये पुष्ट हो जायेगी। अफसोस तो यह है कि अँग्रेज अकबर की और बातों को भूल गये। नहीं तो जो लड़ाई झगड़े आये दिन

हिन्दुस्तान में मचे रहते हैं इनका कहीं नाम तक न रहता। सम्भव है इसी विचार से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी अजमेर को अपना हैडक्वार्टर बनाया हो लेकिन आर्यसमाज ने उनकी की कराई और सोची सोचाई बातों पर एक दम पानी फेर दिया।

ब्रह्मासिंह ने अजमेर की सैर की। ख्वाजा मुइनउद्दीन के मज़ार की ज्यारत (दर्शन) की। वैदिक यन्त्रालय देखा। आर्य समाज के यतीमखाना (अनाथालय) की भी देख भाल की। वह पक्का सनातनी था लेकिन अब कौन सनातनी है जो आर्य समाज को प्रेम की दृष्टि से नहीं देखता।

अजमेर में दो सप्ताह बीत गये। फिर वह पुष्कर तीर्थ को चला आया। सारे संसार में यह अकेली जगह है जो ब्रह्मा जी के नाम से निर्दिष्ट है। हिन्दुओं में तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश मुख्य समझे जाते हैं। विष्णु और महेश की पूजा तो हर जगह की जाती है। सारे शहरों में उनके मन्दिर हैं लेकिन अगर कहीं किसी देवता की पूजा का प्रबन्ध नहीं है तो वह ब्रह्मा जी ही हैं। हिन्दू क्यों इतने रुष्ट हैं और क्यों इनकी पूजा नहीं करते यह एक ऐसी बात है जिसका सन्तोष जनक उत्तर आज तक किसी ने नहीं दिया और न देता है। ब्रह्मा की अमलदारी पुष्कर तीर्थ ही तक खत्म है।

लेकिन यह तीर्थ क्या है ? उजाड़ जगह है। काशी, पुरी, मथुरा, हरद्वार और द्वारका जैसी चहल पहल और चमक दमक यहां कहां ! धार्मिक धूमधाम कहीं देखने में भी नहीं आती। हाँ ! एक जगह दुखभंजन नाथ गोरखपन्थी कनफटे साधू ने डेरा जमा लिया था। पढ़ा न लिखा, किसी मामूली जमींदार का लड़का था, मन चला और उत्साही ! घर में अनबन हुई, भाग निकला, यहां आया, गुरु अकालीनाथ का चेला हो गया, कान फड़वा लिये, मुद्रा पहिन ली और हिन्दी भाषा के दो चार शब्द याद कर लिये। बस ! यही उसकी योग्यता थी। अकालीनाथ का गुरुमुख चेला कोई और था

जो सीधा सादा था। वह अघोरनाथ के नाम से प्रसिद्ध था। यह बात सब लोगों में फैल गई थी कि अकालीनाथ के पीछे यही महन्त होगा। दुखभंजन को यह पसन्द नहीं था। उसे महन्त बनने की सूझी। गुरु की सेवा में रात दिन रहने लगा और उनको अपनी सेवा से ऐसा प्रसन्न करने लगा कि वह इसके सिवा और किसी से अपना काम नहीं कराते थे। उसे उनके ताला कुंजी और माल असबाब पर हाथ डालने का अवसर मिल पया। जब अकालीनाथ ने प्राण त्याग किया दुखभंजन उनके आसन के पास बैठकर झूमने लगा जैसे उसके सर पर भूत आया हुआ है। महन्त के दफन कफन की किस को सूझती। सब उससे पूछने लगे—'महाराज! आप कौन हैं?' यह बोला—'मैं अकालीनाथ हूँ। इस दुखभंजन के शरीर में कुछ दिनों और रहूँगा। अघोरनाथ और तुम सब को चाहिये कि मेरी तरह इसका सम्मान करो।' चेले चाँटे गँवार थे, एक झाँसे में आ गये। उसे महन्त बनाया और फिर अकालीनाथ की लाश को मठ के अन्दर समाधि दी गई। दुखभंजन धूर्तता से महन्त बन गया लेकिन अघोरनाथ से दिल में डरता था कि कहीं किसी समय वह मुकाबले पर न आ जाये। इसलिये उसने अपना जत्था बनाया। यह सिद्ध बना और वह उसके साधक हुये। मठ का खजाना हाथ में था। इसने अघोरनाथ के साथियों को भी रुपया दे दिलाकर अपनी ओर खींच लिया। अघोरनाथ से कुछ करते धरते नहीं बना। वह गुरु के मठ को छोड़कर और जगह चला गया और साधुओं की तरह जीवन व्यतीत करने लगा। दुखभंजन चलता पुरजा था, पढ़ा लिखा तो था नहीं लेकिन अजमेर आर्य समाज के जलसों में आने जाने से उसने उसकी बहुत बातें सीख ली थीं। अब इस अवसर पर उसने उसी रंग ढंग को ग्रहण किया—स्कूल बनाया, अनाथालय खोले, साधकों को गाँव गांव भेज कर दस दस चेले बनाकर हर जगह अपने नाम से मंडलियां बना लीं जो उस मठ की सहायक बन गईं। इस तरह उसका काम देखते २

थोड़े ही दिनों में बहुत बढ़ गया। पुष्करनाथ के आस पास उसके अनगिनत चेले हो गये थे और जो यात्री आते उनको भी यह चेले समझा बुझाकर उसके दर्शन को ले जाते और चेला मुँडा देते।

जिस समय ब्रह्मासिंह पुष्कर में पहुँचा दुखभंजन की बड़ाई की महिमा का हाल लोगों से सुना। उससे मिलने की इच्छा हुई। मन में दुखी था। सोचा—'क्या अजब इस साधू के सत्संग से मेरा दुख दूर हो जाये!' गया, मिला, देखा कि सौ दो सौ आदमी उसकी बात को सुन रहे थे। इनके बीच में एक गोरे रंग की स्त्री बैठी हुई थी। साधू उसी के प्रश्नों का उत्तर दे रहा था। वह पूछती जाती थी। यह समझाता जाता था। पहिले इसका सिलसिला कैसे चला इसका जानना महा कठिन है। ब्रह्मासिंह ने इतना ही सुना:—

स्त्री—'आप ने माया की निन्दा की, बुरा भला कहा लेकिन सोच समझ कर नहीं कहा। आप को माया की समझ चावल बराबर भी नहीं है। क्षमा कीजियेगा।'

दुखभंजन हँसा—'माई! तुझे अप्रसन्न न होना चाहिये। पढ़ी लिखी स्त्री है। माया भी स्त्री ही है। इसलिये तुझे बुरा लगा।'

स्त्री—'मैं पढ़ी लिखी हूँ तब ही तो मैंने आप को ऐसा कहा। आप के चेले तो आप के सामने मुँह तक नहीं खोलते और न खोल सकते हैं। मैं इनसे भी हाथ बाँधकर क्षमा मांगती हूँ। मैं आप के पास जिज्ञासा के लिये आई हूँ। इसलिये मुझे अधिकार होना चाहिये कि मैं आप से खुलकर बात-चीत करूँ।'

दुखभंजन—माई! कोई तेरे अधिकार को छीन नहीं सकता। जो तू पूछना चाहे पूछ सकती है।'

स्त्री—'शक्तिवान बड़ा कि शक्ति? ईश्वर बड़ा या माया?'

दुखभंजन—'शक्ति से शक्तिवान बड़ा है! माया से ईश्वर बड़ा है।'

स्त्री—'क्यों?'

दुखभंजन—'इसलिये कि माया ईश्वर में रहती है और शक्ति शक्तिवान में रहती है।

स्त्री—'आप का यह विचार है कि बर्तन उस वस्तु से बड़ा है जो उसमें रक्खी गई है।'

दुखभंजन—'बात चीत में तो ऐसा ही कहना पड़ेगा।'

स्त्री—'दूध हाँडी में रहता है। इसलिये दूध से हांडी अच्छी हुई। हीरा डब्बे में रहता है इसलिये डिब्बा हीरे से अच्छा हुआ। इत्र शीशी में है। शीशी इत्र से अच्छी ठहरी। क्या आप के कहने का यही आशय है ?'

दुखभंजन के होश ठिकाने हुये लेकिन था बड़ा ही सयाना, सँभल गया और सोचकर बोला—'माई इस अवसर पर तूने जो उदाहरण दिये हैं वह ईश्वर और प्रकृति के विषय में नहीं हो सकते।'

स्त्री—'अच्छा ! आप ही इन्हें स्पष्ट कीजिये।'

दुखभजन—'तेरी मिसालों में चीजें अपने बर्तनों से भिन्न हैं। इसलिये यह मिसालें ठीक नहीं हैं।'

स्त्री—'बहुत अच्छा ! मैं अब इस तरह कहती हूं—'फूल और फूल की गंध दोनों एक ही असल से हैं। वास गुण है। फूल गुणी है। आपका कहना कि गुण गुणी में रहता है। इसलिये गुण वाला गुण से बढ़कर है। या यों कहिये—शक्ति ईश्वर में है इसलिये ईश्वर शक्ति से बढ़कर है। यह आपका मतलब है या और कुछ ?'

दुखभंजन—'मेरे कहने का तात्पर्य यही है। माया ईश्वर के आधीन है। उसका अपना कोई अस्तित्व या सत्ता नहीं है इसलिये ईश्वर का दर्जा माया से बढ़कर है।'

स्त्री—'और माया की प्रशंशा नहीं बल्कि निन्दा होनी चाहिये ?'

दुखभंजन उलझन में फँस गया, सँभल कर बोला—'बात तो यही सिद्ध होती है लेकिन इसमें थोड़ी सी भूल है।'

स्त्री—'फिर उसे समझाइये। वह भूल क्या है ?'

दुखभंजन—'भूल यह है कि माया को ईश्वर से अलग मानकर जब उसका अहंकार किया जाता है तो वह निन्दनीय हो जाती है।'

स्त्री—'और अगर उसे ईश्वर से अलग न किया जावे तब तो वह प्रशंसनीय होगी !'

दुखभंजन लाजबाब होने लगा और सुनने वालों का दिल उसकी ओर से फिरने लगा।

इस जगह दुखभंजन नाथ के दो तीन पक्षपाती चेले भी बैठे हुये थे। जब देखा कि गुरु का रंग फीका पड़ने लगा उन्होंने शरारत से लेना चाहा और स्त्री को डाँटने लगे। ब्रह्मासिंह ने तड़प कर कहा—'यह क्या बात है सत्संग में ऐसी असभ्यता न होनी चाहिये। यहाँ हर एक को पूरा-पूरा अधिकार है कि वह अपने विचार को खुले शब्दों में प्रकट करे।' चेले डरे और चुप हो रहे।

स्त्री बोली—'महाराज ! आप आचार्य गुरु हैं, क्रोध न करना चाहिये। अगर आप भूल पर हैं तो उसके मानने में इन्कार क्या है ? मैं आप से लड़ने झगड़ने नहीं आई बल्कि सचाई को समझने आई हूँ। अगर आपने समझ लिया है तो साफ २ हमें भी समझाइये और अगर नहीं समझा है तो मुझे अवसर दीजिये कि मैं आप को भली भाँति समझा दूँ जिससे आप के हृदय में भ्रम नाम को भी न रह जाये। आज तो आप या आप के चेले जबरदस्ती मेरी जुबान बन्द कर देंगे कल जब किसी जबरदस्त साधू से पाला पड़ जायेगा तब आप लोग बगल झांकने लगेंगे और यही भ्रम बुरी तरह से भ्रान्ति के गढ़े में ढकेल देगा।'

दुखभंजन ने अपने चेलों के अपराध के लिये क्षमा माँगी 'माई ! तू जो कुछ कहना चाहती है साफ साफ कह। अब कोई न बोलेगा।'

स्त्री—'मुझे आप से शास्त्रार्थ नहीं करना है। मैं देखती हूँ कि लोग बिना समझे बूझे दिन रात माया के पीछे डण्डा लिये फिरते हैं और ऐसी बातें कहा करते हैं जो उन्हें शोभा नहीं देतीं। वह

असलियत को क्यों नहीं समझते ! इस गाली गलौज से मिलता क्या है !'

दुखभंजन—'फिर अब तू क्या चाहती है ?'

स्त्री—'मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं है। मैं तीर्थ करने आई। बनारस की रहने वाली हूँ। सुना, आप सत्संग कराते हैं। उससे लाभ उठाने के लिये आगई। आप ने माया की निन्दा की। मुझे वह पसन्द नहीं आई। इसलिये चुप रहना उचित नहीं समझा। मुझे पूरा पूरा विश्वास हो गया है कि अब तक ईश्वर की माया की समझ आप लोगों में से किसी को नहीं आई है। अगर आप लोग पसन्द करें तो आज नहीं कल मैं इस विषय पर एक छोटा सा व्याख्यान इसी जगह दे दूँ जिससे यह भ्रम सदैव के लिये दूर हो जाये और आप लोग असलियत को समझ सकें।'

दुखभंजन—'माई ! तेरा नाम क्या है ?'

स्त्री—'मेरा नाम माया है।'

दुखभंजन को यह नाम सुनकर आश्चर्य हुआ, बोला—'माई ! कल तू ग्यारह बजे दिन को आ जा। मैं लोगों के बैठने का प्रबन्ध करा दूँगा। फिर तू अपने विचार को प्रकट करके हम सब को लाभ पहुँचा सकेगी।'

सब लोगों ने यह बात मान ली। माया ने दुखभंजन को हाथ बांध कर नमस्कार किया और विदा हुई। उसके साथ ब्रह्मासिंह इत्यादि भी उठे और अपने स्थानों को चले गये।

दूसरा अध्याय

तीर्थवासी माया

स्त्री के नाम में जादू है और नाम भी कैसा ? माया ! माया आप जादू है और जादू ही का दूसरा नाम माया है । पुष्कर में इस समय लाखों और करोड़ों की भीड़ तीर्थयात्रा के लिये आई थी। सब ने सुना कि मायादेवी बनारस की योगिनी दुखभंजन नाथ के अखाड़े में व्याख्यान देगी। ठट के ठट आदमी टूट पड़े। ब्रह्मासिंह के दिल पर माया की बातों ने और उसकी सज धज ने बड़ा गहरा प्रभाव डाला था। माया के दिल में भी उसके लिये जगह होगई थी क्योंकि उसने माया की सहायता में दुखभंजन नाथ के चेलों को अच्छी डाँट बतलाई थी। एक को दूसरे का ध्यान रहने लगा लेकिन मिलने जुलने या बात-चीत करने की नौबत नहीं आई। इतनी बड़ी भीड़ में उनकी आँखें एक दूसरे को ढूँढने लगीं। दिल का मेल विचित्र ढंग से काम करता है और एक को दूसरे के साथ गुथकर जकड़ देता है। दोनों की अवस्था भी लगभग बराबर ही थी।

ब्रह्मा और माया की आँखें मिलीं। माया ऊँची जगह पर बिठाई गई थी जो दुखभंजन ने उसके लिये तैयार कराई थी। ब्रह्मासिंह अपने क्लर्क बाबू के साथ वहां से थोड़ी दूर पर बैठा हुआ था। ब्रह्मा ने हाथ बांधकर नमस्कार किया। माया ने आंख और सर के इशारे से उसका जवाब दिया। अब दोनों के दिलों में यह बात बैठ गई कि एक ने दूसरे के दिल में जगह पा ली है।

भीड़ भाड़ बहुत थी। हजारों आदमी आ गये थे। दुखभंजन के चेलों ने पहिले खड़ताल पर गोरखनाथ जी के भजन गाये। फिर दुखभंजननाथ महन्त ने खड़े होकर ऊँचे स्वर से कहा :—

'प्रेमी सज्जनो ! आज का दिन बहुत मुबारक है। सत्संग असली

तीर्थ है। तीर्थ-यात्रा का लाभ सत्संग है। दूर दूर से लोग आये हुये हैं। बड़े सौभाग्य की बात है कि काशीपुरी की विदुषी योगिनी मायादेवी माया का साक्षात् रूप धारण करके यहां विद्यमान हैं। माया के तीन रूप, पार्वती लक्ष्मी और सरस्वती हैं। यह तीन रूप कहने के लिये हैं। माया असल में एक है जो तीन तरह पर अपना काम करती है। तीन कामों के करने ही से उसके तीन रूप हो जाते हैं। इन तीनों का सम्मिलित नाम गायत्री है। गायत्री का असली अर्थ तीन तरह का गाना है—'गा'=गाना और 'त्रै'=तीन। इसी तरह ईश्वर भी एक होता हुआ तीन तरह के काम करने के कारण तीन नाम और तीन रूप वाला हो जाता है—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। यही तीनों त्रिदेव कहलाते है। ईश्वर की समझ माया को है और माया की ईश्वर को है। आज इस माया ने हम सब पर कृपा की है और अपना सदेह दर्शन दिया है। अब आपको उनके श्री मुख से सुनने का अवसर मिलेगा कि यह माया क्या वस्तु है और ब्रह्माण्ड में उसकी क्या हैसियत है। इस भूमिका को समाप्त करके मायादेवी से मैं प्रार्थना करता हूँ कि वह खड़ी होकर अपना दर्शन दें और अपने व्याख्यान से हम सब को लाभ पहुँचायें।'

दुखभंजन यह कह कर बैठ गया। उसी समय माया ऊँची जगह पर खड़ी हुई। गोरा रंग, सांचे में ढला हुआ शरीर, अंग अंग सुडौल, बड़ी-बड़ी आंखें, थोड़ी उम्र। वह साक्षात् शान्ति और प्रकाश की देवी बनी हुई थी। शरीर पर गेरुवे रंग की साड़ी थी जिसने उसके सौन्दर्य को और भी बढ़ा रक्खा था। उसके उठते ही तालियाँ बजीं और सब लोगों ने हाथ बाँध कर नमस्कार किया। माया ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया :—

'भाइयो और बहनो! आप के दर्शन से मैं प्रसन्न हुई। मैं काशी-पुरी से पुष्कर राज में आई। यह ब्रह्मा जी की वेदी की जगह है। ब्रह्मा सृष्टि कर्ता और यज्ञ हवन के अधिष्ठाता हैं। यह उनकी सृष्टि

ही यज्ञस्थान है जिसका प्रबन्ध ब्रह्मा जी ने कई ढंग पर कर रक्खा है। उसने कहा—'मैं एक हूँ अनेक हो जाऊँ' और उसने अपने आप को दो रूप में मटर के दाने की तरह बांट लिया। एक पुरुष हुआ दूसरी प्रकृति हुई। दोनों मिले। उनके मिलने से जगत् के सारे जीव जन्तु उत्पन्न हो गये और वह ब्रह्मा इनकी दृष्टि से प्रजापति कहलाया। उसकी सृष्टि सावित्री हुई जिसे साधारण रीति से लोग माया कहते हैं।

कल दुखभंजन नाथ महाराज ने मुझे से प्रार्थना की थी कि मैं इस माया शब्द की व्याख्या करदूँ। लोग भूल और भ्रम में पड़े हुये हैं। सच्चाई को तो वह समझते नहीं और व्यर्थ ही माया को उठते बैठते कोसा करते हैं, गालियां देते हैं और समय को नष्ट करके अपने आप को बरबाद कर देते हैं।

कोई रुपया पैसा जायदाद और माल असबाब को माया मानकर उनसे भागने को वैराग समझता है और गली गली मारा मारा फिरता है। कोई स्त्री और बाल बच्चों को माया का सामान जानकर उनसे अलग थलग होना चाहता है। कोई धर्म कर्म को माया समझकर छोड़ बैठा है और व्यर्थ में बदनामी उठाता है।

माया की किसी को भी समझ नहीं है और समझ कैसे आये ? जब आदमी भ्रम और अज्ञान में फँस जाता है तो फिर उससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। मैं माया हूँ। मैं माया के रूप में आज इस जगह आप के सामने आई हूँ। मुझे देखिये, मेरी सुनिये, मेरी बातों पर विचार कीजिये तब आप माया की असलियत को समझ जाइयेगा और फिर यह भ्रम सदैव के लिये दूर हो जायेगा। वैसे आप लाख यत्न करें इसकी समझ न आयेगी।

मैं जो बात कहूँगी खुले शब्दों में कहूँगी। लगाव लपेट का मेरे यहां काम नहीं है। मैं बात कहती हूँ और बात की जड़ कहती हूँ और बात की जड़ को खोल कर दिखा देती हूँ। इसलिये अगर आप

थोड़ा सा ध्यान देंगे तो यह माया चुटकी बजाते ही आप की समझ में अभी दम के दम में आ जायेगी, नाम के लिये भी कठिनाई न होगी और अगर शब्दों के गोरख धन्धे में फँसते हो तो यह गुत्थी आप के सुलझाये कभी न सुलझेगी। मैं आप माया हूँ। अपना रूप आप दिखाने आई हूँ। मुझे देख लीजिये और माया के देखने ही से आप को माया की समझ आ जायेगी।

माया का शब्द संस्कृत के दो धातुओं से मिलकर बना है—'मा' का अर्थ है 'मापना' और 'या' का अर्थ है 'यन्त्र'। इन्हीं दो शब्दों पर विचार करने से माया अभी दम के दम में समझ में आ जाती है। जिस यन्त्र से माप किया जाय वह माया है। जिस तराजू, से तोल किया जाये वह माया है। जिसकी सहायता से किसी वस्तु की असलियत समझ में आये वह माया है। देखिये किस सरलता के साथ मैंने माया का अर्थ आप को समझा दिया। यह आप समझ गये। इसके समझने में कठिनाई नहीं हुई!

अब सोचने की बात यह है कि जिस यन्त्र या जिसकी सहायता से सब की असलियत का पता लगे वह आप क्या है? क्या वह धन द्रव्य माल असबाब और मान प्रतिष्ठा है? नहीं वह कोई और ही वस्तु है और उसी के न समझने से आप लोगों को भ्रम हो रहा है। पूछिये वह क्या है? और मैं उसे अभी समझा दूँगी।'

भीड़ में बहुत से लोग बोल उठे— माया का अर्थ तो आज ही सुनने में आया। अब ऐसी ही सहज युक्ति से समझाइये कि माया क्या है?

माया बोली—'वह आप की बुद्धि है। बुद्धि के सिवा माया और कुछ नहीं है। जिससे या जिस यन्त्र से आप सब की निरख परख तोल माप और जाँच पड़ताल करते हैं वह आपकी बुद्धि ही तो है। बुद्धि के सिवा वह न और कुछ है न हो सकती है और न कभी होगी और न होने वाली है। यही माया है। कहिये! यह मैंने ठौर ठिकाने

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

की बात कही है या यों ही आप को भ्रम में डाल दिया है !'

माया की बातों पर खूब खूब तालियां बजीं और सब ने सहमत होकर कहा—'सच्ची बात है। माई ! तू सरस्वती का अवतार है। जो बात आज तक किसी ने इस सफाई के साथ नहीं कही थी वह तूने कह दी। धन्य है तू ! तेरी बुद्धि !! और विचित्र युक्ति !!!'

माया ने हाथ उठाया। शोर कम हुआ। वह बोली :—

वस्तु कहीं ढूंढ़े कहीं, किस विधि आवे हाथ।
कहें कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ॥
भेदी लिया जो साथ में, वस्तू दई लखाय।
कोटि जन्म का पन्थ था, पल में पहुँचा जाय॥
यह तन बिष के बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान॥
बात का हुआ बतंगड़ा, बात न समझे कोय।
जो सत्गुरु ज्ञानी मिले, ज्ञान परापत होय॥
पढ़ते हैं गुनते नहीं, तोता जैसी बात।
ऐसे नर संसार में, मलें शोक का हाथ॥

यह माया है। यह माया का अर्थ है। अब बताइये कि यह निन्दा करने की बस्तु है या प्रशंसा करने की ?'

दुखभंजन नाथ ने पूछा—'माई ! तेरा कहना सच है लेकिन सनातन से सब माया की निन्दा करते चले आ रहे हैं। क्या वह भूल पर थे ?'

माया हँसी—'यह प्रश्न उनसे करना चाहिये। अगर वह भूल पर नहीं थे तो फिर माया की निन्दा कैसे करते रहे ? कहीं न कहीं भूल तो थी।'

दुखभंजन नाथ ने कहा—'यह अगर तू मुझे समझा दे और उनकी भूल बता दे तो मैं आज से अपनी महन्ती छोड़दूँ और तेरा चेला होकर रहूँ।'

माया हँसी—'तुमने भूल की। माया महन्ती में नहीं है न चेला गुरु में है। मैं तुम को हराने या परास्त करने नहीं आई हूँ। तुम जैसे हो वैसे बनो रहो। सचाई को समझो और बस !'

'तुम ने पूछा है कि क्या सब लोग सनातन से इस माया के समझने में भूल करते आ रहे हैं ? मैं इसका जबाब 'हां' 'नहीं' दोनों शब्दों में देती हूँ। दूसरी बात ध्यान के साथ सुनो जिसमें तुम्हारा यह भ्रम अभी दम के दम में दूर हो जाये।'

यह माया या बुद्धि दो तरह की है—एक व्यष्टि (जुजवी) दूसरी समष्टि (मजमूयी)—एक महदूद दूसरी गैरमहदूद—एक ईश्वरी दूसरी जीवी। ईश्वर की माया या बुद्धि अपूर्ण नहीं है। अपूर्ण में अपूर्णता का दोष होता है और पूर्ण में पूर्णता का गुण रहता है। टुकड़े टुकड़े कर दिये जाने में कमजोरी रहती है और एक साथ गुथे रहने से पुष्टि आती है। कई सूतों को इकट्ठा कर दो तो मजबूत रस्सी बन जायेगी। मोटी रस्सी के सूत सूत को अलग कर दो, सब में कमजोरी आ जायेगी।'

मनुष्य की बुद्धि या माया महदूद, इसलिये उसे दुख होता है। अगर किसी तरह यह दोष दूर हो जाये तो उसे अभी आनन्द की अवस्था प्राप्त हो जाये।'

दुखभंजन नाथ ने कहा 'माई ! इसे किसी उदाहरण से समझा दे।'

माया बोली—'अगर कोई आदमी इसी पुष्कर तालाब से दो सेर पानी का एक घड़ा भर कर चले तो एक कोस जाते जाते उसका सर बोझ से दुख जायेगा। गर्दन में दर्द होने लगेगा और सारा शरीर थक जायेगा लेकिन अगर कोई इस तालाब में गोता मारे तो सैकड़ों मन पानी ऊपर, सैकड़ों मन नीचे, दायें बायें आगे पीछे पानी ही पानी हो जायेगा और उसे दुख न होगा। कहो ! अब समझे या नहीं ?'

दुखभंजन नाथ बोला—'बात साफ हो गई। माई ! तू बड़ी

समझ बूझ वाली है। मैंने समझ लिया कि साधन सम्पन्न होने के कारण यह सब तेरा निज अनुभव है. नहीं तो तेरी बात इतनी प्रभावशाली न होती। थोड़ी सी इसकी और व्याख्या करदे।'

माया—'यह बात ईश्वर की भक्ति से प्राप्त होती है। जीव को जब तक अपने जीवपने का अभिमान है तब तक उसमें महदूदियत का नुक्स (अल्पज्ञता का दोष) है। इसका नतीजा दुख ही होगा। जब वही जीव भक्ति की राह में आकर ईश्वर से प्रेम का नाता जोड़ लेता है तो फिर उससे जीवपने का अभिमान दूर हो जाता है और वह ईश्वर अभिमानी बन जाता है। फिर इसका दुख सुख में बदल जाता है।'

व्याख्या में समय बहुत हो गया। सुनने वाले थक गये। सब ने माया से दूसरे दिन उपदेश देने की प्रार्थना की। उसने भी स्वीकार कर लिया। सब लोग माया की प्रशंसा करते हुये अपने अपने घर गये। दुखभंजन अपने अखाड़े के सारे साधुओं के साथ उसका चेला हो गया और उससे योग का साधन सीखा।

तीसरा अध्याय

तीर्थ बासी माया और दुखभंजन नाथ

दूसरे तीसरे और चौथे दिन माया का व्याख्यान मठ में होता रहा। बहुत से लोग उसके श्रद्धालु हो गये।

धूम मच गई। दुखभंजन नाथ महन्त था। इधर उधर चारों ओर वह मशहूर हो चला था। जाट, राजपूत, ब्राह्मण, बनिये उसके चेले थे। वह आप माया का चेला हो गया। यह बात जंगल की

आग की तरह फैल गई। फिर क्या था ! या तो लोग उसके व्याख्यान सुनने के लिये टूटते थे या अब चेले होने लगे। सैकड़ों आदमियों को वह एक साथ बिठाकर मन्त्र देने लगी और मन्त्र भी कैसा ! सहज योग का ! बात समझ में नहीं आती कि किस तरह एक दिन में इतने आदमी चेले बनाये जा सकते हैं ! लेकिन हुआ ऐसा ही और यह सब के सब दुखभंजन नाथ के मठ के मातहत हो गये। माता कई दिन वहाँ रही और कई हजार आदमी उसके चेले हो गये। अजमेर तक के लोग चेले बन गये। गांव के गांव शिष्य होते गये। माया बुद्धिमती थी ? थोड़ी उम्र थी तो क्या हुआ ? ईश्वर जाने इतना अनुभव उसे कहाँ हुआ था ! अगर वह आर्य समाज की गोद में पली होती तो यह कहा जा सकता था कि वहां उसने रंग ढंग सीखे थे लेकिन उसे तो सामाजिक हवा तक नहीं लगी थी। हाँ आर्यसमाज का लिट्रेचर उसने जरूर पढ़ा था।

उसने दुखभंजन नाथ से पूछा—'तुम ने साधू का बाना क्यों धारण किया ?'

महन्त ने उत्तर दिया—'माई ! मैं तुझ से झूंठ न बोलूंगा। मैं जाट का लड़का हूँ। खेती बारी का काम मुझ से नहीं हो सकता था। मैं चाहता था कि बैठे बिठाये खाना मिल जाया करे। इसीलिये मैं अकालीनाथ का चेला हुआ। गुरु की मान प्रतिष्ठा देखी, मुँह में पानी भर आया। हिकमत के साथ काम निकाला। चेला बनकर रहने से जी घबरा गया, गुरुवाई की सूझी। अकालीनाथ जी मर गये। मैदान खाली पाकर मैंने उसके गुरुमुख चेले को धक्का दिया। वह निकल भागा और मैं चेले से गुरु हो गया। यह मेरी राम कहानी है। मैंने इस बात को समझ लिया है—'दुनियां खाइये मक्कर से, रोटी खाइये शक्कर से।' जो मेरा हाल था मैंने ठीक कह सुनाया—

गुरु से कपट मित्र से चोरी।
की होय निर्धन की होय कोढ़ी ॥

माया मुस्कराई—'सच है। कुछ हर्ज नहीं। सृष्टि में जो जिस काम के लिये पैदा किया गया है वह वही तो करेगा। अब तक तुम ने जो किया अच्छा किया लेकिन यह बतलाओ तुम मेरे चेले क्यों हुये ?'

दुखभंजन बोला—'इसका उत्तर मैं पीछे दूँगा। आप यह बतायें कि मुझे आप ने क्यों अपना चेला बनाया ?'

माया को अब लेने के देने पड़े। इसी एक प्रश्न से वह समझ गई कि चेला मामूली दिमाग का आदमी नहीं है, समझ बूझ रखता है। उसने माया को क्यों गुरु धारण किया यह एक रहस्य था जिसे अब तक न उसने समझा था न प्रकट किया था। माया भी उससे कम नहीं थी। सोच समझ कर बोली—'तुम ने प्रण किया था कि हार मान लेने पर मेरे चेले हो जाओगे। मुझे तुम्हारी प्रतिज्ञा रखनी थी। इसलिये मैंने तुम को तुम्हारी इच्छानुसार अपना चेला बना लिया। एक बात और भी थी। मैंने देखा—तुम में परमार्थ की असली और सच्ची समझ नहीं है लेकिन ढोंग के आदमी हो। मैं शायद तुमको राह पर ला सकूँ और तुम्हारे राह पर आने से बहुतों का भला हो इसलिये तुम्हें चेला बनाने में मैंने कोई रोक टोक नहीं की। इसका नतीजा अच्छा ही हुआ।'

दुखभंजन ने उत्तर दिया—'आप ने मेरे दिल की बात भांप ली। मेरा भी यही विचार था। मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया था कि आप की संगत से मेरी परमार्थी कमाई पूरी हो जायेगी और मैंने जो काम हाथ में लिया है वह लाभदायक और फलदायक होगा। पहले मुझ में कमजोरी आ गई थी, सन्देह हो गया था कि स्त्री के चेला हो जाने से लोग मुझ से फिर जायेंगे लेकिन ईश्वर ने मुझे आँखें दी हैं। मैंने सुना कि कई साहूकार आप से नाम लेना चाहते हैं। मैंने सोचा कि आप का चेला बन जाने से यह सब मेरे मठ के सहायक हो जायेंगे और मेरी दुकान चमक उठेगी। इनमें से गुरु

बनने की इच्छा न तो किसी में है और न हो सकती है। यह मेरे मुकाबले पर न आयेंगे और मैं इनसे अपना काम निकाल सकूँगा।'

माया मुस्कराई—'वास्तव में तुम बड़े ही समझदार हो और साथ ही बच्चे भी हो। अब अगर तुम मेरे चेले हो गये हो तो फिर जिस काम को तुमने हाथ लगाया है उसे पूरा करके छोड़ना, साथ ही मैंने जो सहजयोग की युक्ति बताई है इसका अभ्यास बराबर करते रहना। अगर मेरी शिक्षा मानोगे तो थोड़े ही दिनों में स्वार्थ और परमार्थ दोनों का सुधार हो जायेगा और तुम्हें वह सच्चा आनन्द मिलेगा जिसका तुम को अनुभव भी नहीं है। लोग जीवन पर्यन्त रगड़ करके मर जाते हैं। उन्हें सफलता प्राप्त नहीं होती। इस युक्ति से तुम थोड़े ही दिनों में हर तरह की वृद्धि और उन्नति कर सकोगे।'

दुखभंजन अपने मन में बहुत ही प्रसन्न हुआ। पूछा, 'आप क शिक्षा क्या है ?'

माया ने समझाया—'साधारण बातें हैं। मैं तुम्हें जुबानी समझा देती हूं। यहां से जाते समय लिखकर दे जाऊँगी जिसमें तुम उससे काम ले सको।'

दुखभंजन—'क्या आप यहां न रहेंगी हैं?'

माया—'नहीं ! मैं फकीरनी नहीं हूँ। मैं घर छोड़कर दूसरी जगह नहीं ठहर सकती। मेरे कुटुम्ब के लोग मौजूद हैं। मेरे साथ दो सहेलियां हैं जो तीर्थ-यात्रा के विचार से यहां आई हैं। मैं तुम्हारे मठ में सत्संग के लिये आई थी। सत्संग करा दिया। तुम राह पर आ गये। अब मैं कुछ दिनों पीछे अपने साथियों को लेकर घर जाकर रहूँगी। कौने जाने तुम्हें फिर मेरा दर्शन मिले न मिले ! यहाँ की बात और थी। घर जाकर मैं पर्दे में रहूँगी। मेरी बिरादर में पर्दे का बहुत ध्यान रक्खा जाता है। कौन जाने ! मैं यहां तुम्हारे ही उद्धार के लिये आई हूँ।'

वह चला गया। माया नहीं चाहती थी कि वह फिर मठ में जाये। पुष्कर तीर्थ की यात्रा पूरी हो चुकी थी। वह घर लौटने के लिये तैयार थी लेकिन ब्रह्मासिंह के लिये एक दिन और ठहर गई। दूसरे लोगों को भी पता लग गया कि वह एक दिन और मठ में जायेंगी। फिर क्या था! ठट के ठट श्रद्धालु भक्त मठ में दर्शन के लिये पहुँचे। ब्रह्मासिंह अकेले मिलना चाहता था। सब के सामने बात-चीत करने से घबराता था। माया ठीक समय पर वहां आ पहुँची। सब लोग उठ खड़े हुये। वह उसी ऊँची जगह पर जाकर बैठ गई जो उसके लिये बनवाई गई थी। ब्रह्मासिंह को देखकर वह उसके भाव को भाँप गई, उसे पास बुलाया और सब से आगे की लाइन में बिठाकर पूछा—'कहो! क्या कहते हो?'

'मैं अपने दिल की बात आप से कहकर शिक्षा लेना चाहता हूँ।'

'क्या हर्ज है! जो कुछ कहना हो कहो। मैं सुनूँगी जो समझूँगी उसी के अनुसार तुम्हें उत्तर दूँगी।'

'लेकिन अगर कोई ऐसी बात हो जो आप के सिवा मैं किसी को न सुनाना चाहूँ तो कैसे कहूँ?'

'यहाँ तुम भूल पर हो। पर्दा में बेपर्दगी और बेपर्दगी में पर्दा है। आत्मा शरीर के अन्दर रहता है, शरीर उसे नहीं देखता लेकिन वह उससे निर्लेप है। यह तुम समझ सकते हो। जो कहना हो इशारों इशारों में कहो। मैं इशारों इशारों में जबाब दूँगी। मेरे और तुम्हारे सिवा कोई भी न समझ सकेगा।'

'दीवार के भी कान होते हैं। यह कैसे हो सकता है?

'जिसकी बात वही कुछ जाने, जिसकी नहीं वह कैसे माने।'

ब्रह्मासिंह दो चार मिनट सोचकर बोला—'माई जी! मैं बहुत दुखी हूँ।'

'मैं जानती हूँ। तुम्हारे दुखों का फोटो तुम्हारे ललाट पर खिचा हुआ है। जो ख्याल तुम्हारे दिल के अन्दर टकरा रहा है उसका

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

प्रभाव आंख और मुख पर पड़ रहा है। मैं उसे खुली आंखों देख रही हूँ। तुम भी उसे जान रहे हो। दूसरों को उसका ज्ञान नहीं है क्योंकि उनसे उसका सम्बन्ध नहीं है। जहां आग रहती है वहाँ धुआँ उठा करता है। धुयें को देखकर आग का पता लग जाता है। आँख और ललाट आकाश की जगहें हैं जिन पर दिल की बेचैनी के आग का धुआं इकट्ठा हो होकर ऊपर को चढ़ा करता है। गहिरी आँख वालों को वह दिखाई दिया करता है। दूसरे उसकी ओर से अन्धे होते हैं। उन्हें दिखाई नहीं देता। मेरी इस बात से तुम को विश्वास होना चाहिये कि मैं तुम्हारे सच्चे दुख को जान गई हूँ। जो कहना हो अभय होकर कहो। डरो नहीं! मैं तुम्हे इतमीनान दे सकूँगी। मुझे इस बात का पूरा निश्चय हो गया है।'

'मुझे क्या दुख है ?'

'तुमको मानसिक दुख है। दुख तीन प्रकार का होता है:— शारीरिक, सांसारिक, मानसिक। इनके सिवा चौथे तरह का दुख होता ही नहीं। सांसारिक दुख वह है जो सम्बन्धियों, इष्ट मित्रों और भूतों (गर्मी, सर्दी, धूप, बिजली) से होता है। यह तुम को नहीं है। तुम्हारा पालन पोषण सुख और आनन्द में हुआ है। सब लोग तुम्हें प्यार करते हैं। इसका पता तुम्हारी सूरत से लगता है। तुम पढ़े लिखे और सभ्य दिखलाई देते हो, निर्धन या मुहताज नहीं हो। घर के मालदार हो यह दुख तुम को नहीं है। इसका तुम्हें ज्ञान भी है।

शारीरिक दुख भी तुम को नहीं है क्योंकि शरीर रोगी नहीं है। तुम अच्छे तन्दुरुस्त हो। इधर से भी बेफिक्री है। तुम यहां तीर्थ करने के लिये नहीं आये हो न तीर्थ इत्यादि में तुम्हारी श्रद्धा है। तुम यहां घूमने फिरने और आब हवा बदलने के लिये आये हो जिसमें जिस दृश्य के देखने से तुम्हें घृणा और क्रोध उत्पन्न होता था वह तुम्हारी आंखों से अज्ञात रहे। यह तुम भी समझते हो और मैं

पाँचवाँ अध्याय

क्लर्क बाबू

माया बनारस चली गई। दुखभंजन नाथ की मजहबी दुकान चमक उठी। आदमी सयाना था, हिन्दी उर्दू पढ़ ली, स्कूल की बुनियाद रक्खी। पढ़े लिखे लोग भी उसके पास आने जाने लगे। इसने माया के उपदेश का पूरा ध्यान रक्खा। इसके साधक और चेले गाँव गांव चक्कर लगाने लगे। जो मिला उसे गुरु की महिमा सुनाकर मूँडते चले गये। पहिले उसके चेलों ने अजमेर के जिले को हाथ में लिया, फिर जयपुर अलवर भरतपुर की ओर बढ़े। चिराग जलते चले गये। पढ़े लिखे लोग तो पढ़े लिखे लोगों को उसके पास लाने लगे। अपढ़ साधक देहातियों को खींचकर लाये। जब कभी भंडारा होता बीसों हजार की भीड़ पुष्कर में इकट्ठी हो जाती। जब संसार में कोई नया पन्थ चलता है तो उसके चलाने की अकेली यही एक युक्ति है। दुनियाँ भेढ़ चाल है। कोई जाँच पड़ताल करके कभी पन्थ में नहीं आता। एक आता है तो उसकी देखा देखी उसके सम्बन्धी और इष्ट मित्र आप ही आप चले आते हैं। जत्था बढ़ गया। फिर क्या कहना है! भीड़ भाड़ से दुनियां का काम चलता है। काम काम को सिखाता है। जब अनुभव होने लगता है आप ही आप काम का सिलसिला चल निकलता है और दिनों दिन बढ़ता ही जाता है। माया ने तो स्कूल ही खोलने के लिये कहा था। जब रुपया भेंट में बहुत चढ़ने लगा दुखभंजन नाथ ने उसी की पूंजी से कई मिल और कारखाने खोले। बड़ी २ तनख्वाहों पर मैनेजर और काम करने वालों को रक्खा। फिर उनके रहने का बन्दोबस्त होने लगा। कोठियाँ और बँगले बनने लगे। मठ के आस पास एक छोटा सा खूबसूरत कस्बा आबाद हो गया और उसके रहने वाले सब के सब दुखभंजन

दयाल फकीर कृत पुस्तकों का सूची

मानव धर्म प्रकाश हिन्दी	-७५	सार का सार भाग १,२	२.७५
आवागवन उर्फ जीवन रहस्य } हिन्दी	१-००	सचाई उर्दू या हिन्दी	.४०
} उर्दू	-७५	निष्कलंक अवतार हिन्दी	.५०
मनुष्य बनो हिन्दी	-७५	मानव कल्याण भाग १,२,३,४,५	५ ००
सार भेद	-२५	गरुण पुराण रहस्य	१.००
जीवन कल्याण हिन्दी	-७५	अद्भुत मोती	.७५
जगत उभार	१-००	आजादी की कुंजी	.४०
आकाशीय रचना	.५०	गुरु वन्दना	.६५
फकीर वचनामृत	.४०	कबीरसार शब्द व्याख्या	१.००
राधास्वामी शताब्दी पर मेरी भेट भाग १—२	२-२५	शिव फकीर पत्रावली	१.२५
		हृदय उद्गार	१.००
कर्मभोग या मौज भाग १, २	१-७५	अगम वाणी भाग १,२,३ प्रति	१.००
५० वर्षीय फकीर अनुभव	.५०	सुरत शब्द योग	१.००
सत सतगुरु वक्त	१-५०	सत सनातन धर्म अथवा— सत मानव धर्म	३.००
उन्नति मार्ग	-२५		
विश्व धर्म भाग १ व २	१-७५	निर्वाण से परे	१.००
गुरु महिमा	१-००	रचना का भेद	.७५
अजायब पुरुष	१-००	बेहद्दी या अपार के परे	१)२५
मेरा ८३ वर्षीय अनुभव	१-२५	ईश्वर दर्शन	१)
आदि अन्त	१-२५	मत उपदेश	०.५०
सारतत्व सचाई और शान्ति	१.००	मेरी धार्मिक खोज	.५०

महर्षि शिवब्रतलाल कृत पुस्तकों की सूची

महर्षि शिव की जीवनी उर्दू	५.००	आत्मिक उत्कर्ष	१.००
दयाल योग ,,	२.५०	विचारांजलि	१.५०
ववक कल्पद्रुम	१.५०	मूर्ति पूजा रहस्य	०.२५
फलना के स धन हिन्दी	.५०	सत्य सनातन आर्य धर्म	१.२५
अन्तर्मुखी	.५०	रहिमन नीति दोहावली	.५०
मर्म सन्देश	.५०	योग आसन	.२५
गुप्त रहस्य	१.००	सप्त ऋषि वृतान्त	.७५
जैन वृतान्त	.७५	राजस्थान की ललित ललनायें	१.००
नवजीवन सुधार	,७५	सत्संग के ८ वचन	०.७५
कथा कल्पद्रुम	१.००	नन्द भाई की साखी	१.२५
सप्ताह विचार	१.५०	हितोपदेश	५.५०

Registered No. L. 15

महर्षि शिवव्रतलाल कृत हिंदी पुस्तकों की सूची

सम्पूर्ण महारामायण सजिल्द	६)
श्रीमद्भगवद्गीता भाग १–२	२.५०
नानक योग ३ भाग सजिल्द	४)
राधास्वामी योग ६ भाग सजिल्द	५)
कबीर योग प्रथम भाग	२)
,, ,, द्वतीय ,,	[illegible].७५
,, ,, तृतीय	[illegible].५०
शरणागति योग	.७५
उपासना योग	.७५
कर्म योग	.७५
आनन्द योग प्रकाश	२.५०
Light on Anand yog	.३)
आत्मिक प्रायमर	.५०
कबीर आत्मज्ञान प्रकाश	२.००
पंथ सन्देश	३.००

उपन्यास

शाही पति परायण	१.००
शाही भूत	१.००
शाही डाकू	१.७५
शाही लकड़हारा	२.६०
शाही जादूगरनी	१.५०
शाही भिखारी	२.६०
आबदार मोती	१.७५
ताबदार मोती	१.५०

ओ३म् नाविल	२.२५
झलकदार मोती	२.००
गिरहदार मोती	१.००
शाहवार मोती	१.[illegible]
रंगदार मोती	२.००
दलदार मोती	२.७५
कजदार मोती	२.००
शिवजी की अद्भुत कहानी	१.५०

पाठ तथा गाने के शब्द

फकीर भजनावली	१.००
शब्द गुन्जार भाग १,२,३	३.५०
शब्दों का गुटका	०.५०
नन्द भाई की साखी	१.[illegible]
कबीर गूढ़ शब्द व्याख्या	१.००
कबीर शब्दावली	.७५
नैयर आजम प्र०भा०	१.५०
मत कबीर की साखी	१.७५
पिंगल साखी	.६०
स्वास्थ्य और भोजन	१.००
रा०स्वा०मतप्रकाश वचनसार	१.००
जीवन सुधार	१.२५
अनमोल उपदेश	१.००
विचार दर्पण	१.००
विचारशक्ति अथवा मनोविज्ञान	१.५०

मैनेजर

शिव साहित्य प्रकाशन मण्डल

पोस्ट दयालनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)

मिलने का पता—

कार्यालय—'शिव'

लेखराज नगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)

सतीशचन्द्र मीतल द्वारा दयाल प्रिंटिंग प्रेस, लेखराज नगर, अलीगढ़ में मुद्रित

राघव प्रेस के लिए